श्रीशः

लघु-कथा-संग्रह

[illegible]ती संस्कृत मासिक
[illegible] (जयपुर)
भारती भवन
बी-15, [illegible] कालोनी, जयपुर-302004

रचयिता-श्री गिरिराजशर्मा

JACL-KRC
001785
33
LK
1785

संस्कृत-प्रचार परिषद्-प्रकाशनम्
भारती भवन, [illegible]
जयपुर (राजस्थान)

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

पुस्तकालय

पुस्तक संख्या.......................................

वर्गीकरण संख्या.......................................

SV-2024

1785

संग्रह

योऽनूचानः स नो महान्।

राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्

लघु-कथा-संग्रह

1785

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान,
जयपुर परिसर

वर्गीकरण सं..................... 1785

पुस्तक सं. .... दिनाङ्क.......................

यह पुस्तक नीचे अङ्कित तिथि या उससे पूर्व लौटा दी जानी चाहिये। यदि पुस्तक निर्धारित तिथि से अधिक समय तक पाठक अपने पास रखेंगे तो 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब शुल्क देय होगा। पुस्तक सम्यक् देख कर लेवें।

05/02/2022		

श्र...
हिन्दी अनु...
और शिक्ष...
तंत्र के स...
ग्रन्थ अ...
उपयुक्त ...
और शिक्ष...
श्लाघ्य है...

संस्...

SV-2024

1·1J

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जयपुर

पुस्त

वर्गी

लघु-

रचयिता—गिरिराज शर्मा

प्रकाशक

संस्कृत प्रचार परिषद् प्रकाशनम्

भारती-भवन, [redacted]

जयपुर (राजस्थान)

1.1J

SV-2024

प्रकाशक :
संस्कृत प्रचार परिषद् प्रकाशनम्
भारतीय-भवन, [redacted]
जयपुर (राजस्थान)

JACL-KRC
001785

वर्षप्रतिपदा सम्वत् २०३२ : अप्रेल १९७५
मूल्यः— [redacted] रुपये ५) रु०
पाँच

मुद्रक :
श्री राधेश्याम शर्मा
श्री शङ्कर आर्ट प्रिण्टर
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर—२

प्रस्तावना

बालोपयोगी लघुकथा संग्रह में सरल संस्कृत में नो कथाओं का संग्रह किया गया है। इसमें सात कथाएं तो पुराणों की कथाओं से ली है तथा दो कथाएं सिंहासन बत्तीसी से ली गई है। जीवन में उचित मार्गदर्शन करते हुए मानव जीवन के लक्ष्य की ओर प्रेरणा देनेवाली ये छोटी छोटी कथाएं सरल संस्कृत में होने के कारण संस्कृत का अभ्यास भी बढ़ाने में सहायक होगी। इनकी संस्कृत इतनी सरल तथा व्यवहार में उच्चारण किए जाने वाले शब्दों को ही लेकर रची गई है जिससे इनके पढ़ने मात्र से ही इनका भावार्थ एवं शब्दार्थ समझना सुलभ होगा। इसके साथ ही जिनका संस्कृत का अभ्यास बहुत कम हैं वे भी संस्कृत का अभ्यास बढा सकें तथा कथा का स्वाभाविक रसास्वादन भी कर सकें इसके लिए सभी कथाओं का हिन्दी अनुवाद भी इनके साथ दे दिया गया है। आशा है इन कथाओं से पाठकों को उचित लाभ अवश्य प्राप्त हो सकेगा।

विनीत
गिरिराजशर्मा
भारतीभवन
[redacted],
जयपुर

भारती संस्कृत मासिक
राजस्थान (जयपुर)
भारती भवन
बी-15, न्यू कालोनी, जयपुर-302001

विषय सूची

क्रम संख्या	शीर्षक	पृष्ठ संख्या
१.	वामनः	१
२.	भारतवंशीयो श्रीरन्तिदेवः	४
३.	नृगनृपतिकथा	८
४.	विश्वामित्रचाण्डालयोः कथा	११
५.	श्रीकृष्णः सुदामा च	१६
६.	सिंहस्य पुनरुज्जीवकाः चत्वारो भ्रातरः	२३
७.	शुकशारिकोपाख्यानम्	२८
८.	गुरुभक्तः कौत्सः	३७
९.	नाभागोऽम्बरीषश्च	४२

वामनः

भगवतः वामनस्यैव नाम त्रिविक्रमोप्यस्ति। येन वामनेन त्रिपादेन मानदण्डेन त्रैलोक्यं मापितम्। वामनावतारस्य कथा पुराणेषु सुप्रसिद्धाऽस्ति।

भक्तराजस्य प्रह्लादस्य पौत्रोऽसुरराजो बलिरासीत्। इन्द्रेण पराजितः स भृगुवंशीयानां ब्राह्मणानामेकनिष्ठः सेवको बभूव। प्रसन्नानां भृगुवंशीयब्राह्मणानामनुग्रहेण पुनः निःसीमं सामर्थ्यं संप्राप्य तेनेन्द्रस्योपरि आक्रमणं कृतम्। प्रबलमाक्रमणं सोढुमसमर्थो देवराजः विष्णुसमीपं जगाम। विष्णुनाप्युक्तं यत् "तस्यासुरराजस्य बलं ब्राह्मणानामुपासनेन एतादृशमपरिमितं संजातं यदधुना स्वर्गं विहाय पलायनमेवोचितम्। इदानीमसुरराजः ब्रह्मतेज सउपासना-सम्पादनात् सर्वथा धर्मनिष्ठो संजातः "ब्रह्मतेजसः प्रतीकारमसम्भवम्।

स्वर्गान्निर्गतमिन्द्रं विलोक्य देवानां दशा दयनीया बभूव। तेषां देवानां माता अदितिः इमां स्वपुत्राणां दीनां दशां विलोक्य दयार्द्रा संजाता। तया स्वपत्युः कश्यपऋषेः सम्मुखमियमन्त-

वामन

भगवान् वामन का ही नाम त्रिविक्रम भी है। जिन वामन ने तीन पग के मापदण्ड से त्रिलोकी को नापा था। वामन अवतार की कथा पुराणों में सुप्रसिद्ध है।

भक्तराज प्रह्लाद का पौत्र असुरराज बलि था। इन्द्र के द्वारा पराजित वह भृगुवंशीय ब्राह्मणों का एकनिष्ठ सेवक होगया। प्रसन्न भृगुवंशीय ब्राह्मणों के अनुग्रह से पुनः निःसीम सामर्थ्य प्राप्त करके उसने इन्द्र के ऊपर आक्रमण किया। प्रबल आक्रमण को सहन करने में असमर्थ देवराज विष्णु के समीप गए। विष्णु ने भी कहा कि "उस असुरराज का बल ब्राह्मणों की उपासना के कारण ऐसा अपरिमित होगया है कि अभी स्वर्ग को छोड कर भाग जाना ही उचित है। इस समय असुरराज ब्रह्मतेज की उपासना करने से सर्वथा ब्रह्मनिष्ठ होगए, "ब्रह्मतेज का बल ही (सच्चा) बल है" अतः ब्रह्मतेज के बल का प्रतीकार असम्भव है।"

स्वर्ग से निकले इन्द्र को देख कर देवों की दशा दयनीय होगई। उन देवों की माता अदिति इन अपने पुत्रों की दीन दशा को देख कर दयार्द्र होगयी। उसने अपने पति कश्यप ऋषि के सम्मुख इस अन्तर्वेदना को

वँदना प्रगटिता। तेन कश्यपेनोक्तम् यत् 'देवाः यदि असुरेभ्य अधिकतमं ब्रह्मबलं धर्मबलञ्च अर्जयिष्यन्ति तदैव विजयलाभं करिष्यन्ति। एतदर्थं धर्ममूर्तेः धर्मरक्षकस्य च नारायणस्याराधना करणीया। स एव नारायणः देवानां इमां दीनदशामपहर्तुं समर्थः। स असुरराज इदानीं पूर्णतः धर्मनिष्ठोऽस्ति अतः तव पुत्राः देवाः तेषामनिष्टं कर्तुं सर्वथाऽसमर्थाः सन्ति।"

प्रगट किया। उस कश्यप ने कहा कि "देव यदि असुरों से अधिकतम ब्रह्मबल और धर्मबल अर्जित करेंगे तभी विजयलाभ प्राप्त करेंगे। इसलिये धर्ममूर्ति और धर्मरक्षक नारायण की आराधना करनी चाहिये। वे नारायण ही देवों की इस दीनदशा को दूर करने में समर्थ है। वह असुरराज इस समय पूर्णतः धर्मनिष्ठ है। अतः तुम्हारे पुत्र देव उनका अनिष्ट करने का सर्वथा असमर्थ हैं।

ततनन्तरं भगवत्या आदित्या अत्युग्रं तप अनुष्ठितम्। तस्या उग्रतपसः प्रभावेण स्वयं भगवान् विष्णुः तस्याः कुक्ष्यां वामनरूपेण प्रगटितो बभूव। अवतरितेन वामनेन तस्या अदित्या देव्या कामनापूर्तेः वचनमपि प्रदाय सा आश्वस्ता कृता।

तदनन्तर भगवती अदिति ने अत्युग्र तप किया। उसके उग्र तप के प्रभाव से स्वयं भगवान् विष्णु उसकी कोख में वामन के रूप में प्रगटित हुए। अवतार लिये वामन ने उस अदिति देवी की कामना पूर्ति का वचन भी देकर उसे आश्वस्त किया।

असुरराजो बलिः स्वेन्द्रपदं स्थिरीकर्तुं शतसंख्यकानां अश्वमेधयज्ञानां पूरणार्थं सचेष्ट आसीत्। यज्ञाश्च ब्राह्मणसंस्कृतेः प्राणाः सन्ति। अतः ते शतसंख्यकाः यज्ञाः यदि परिपूर्णाः संजाताः तर्हि बलिमिन्द्रासनाद् भ्रष्टुं न कोऽपि समर्थ आसीत्। वामनः ब्राह्मणो भूत्वा तस्य बलिनृपतेरश्वमेधयज्ञे समुपस्थितो बभूव। बलिना समागतस्य ब्राह्मणस्य समुचितं स्वागतं कृतम्। तदनन्तरं यदा तेन बलिनृपतिना वामनस्य सम्मुखमभीष्टकथनाय

असुरराज बलि अपने इन्द्र पद को स्थिर करने को सौ संख्या में अश्वमेध यज्ञ पूर्ण करने को सचेष्ट थे, और यज्ञ ब्राह्मण संस्कृति के प्राण हैं। यदि वे सौ संख्या के यज्ञ पूर्ण हो जाते तो बलि को इन्द्रासन से भ्रष्ट करने को कोई समर्थ नहीं था। वामन ब्राह्मण होकर उस बलि नृपति के अश्वमेध यज्ञ में समुपस्थित हुए। बलि ने आकर उन ब्राह्मण का समुचित स्वागत किया। उसके बाद जब उस बलि राजा ने वामन के सम्मुख अभीष्ट कथन की प्रार्थना की तब उन वामन ने तीन

प्रार्थितं तदा तेन वामनेन त्रिपादपरिमिता भूमिः याचिता । दैत्यगुरुणा श्रीशुक्राचार्येण विष्णोरियं माया ज्ञाता असुरराजो च भूप्रदानार्थं तेन निषिद्ध । बलिभूपतिस्तु पूर्वप्रदत्तवचनानुसारं भूमेः प्रदानार्थं यथापूर्वं सुसिद्ध आसीत् । विष्णुना पादद्वयेन भूलोकं स्वर्गलोकं च सम्माप्य इमे लोकद्वये महेन्द्राय प्रदत्ते । तृतीयपदस्य मानार्थं तस्य बलिनृपतेः समीपं न किमप्यवशिष्टमामासीत् । अस्य परिणामादस्य बलिनृपतेः पुण्यक्षयः जातः । अनुचितमपि तेन स्वगुरुवचनं न पालितमतः तस्य दुष्परिणामादयं क्षीणबलो बलिः वरुणपाशेन बद्धो बभूव ।

सम्पूर्णेनश्वर्येण भ्रष्टोऽपि स बलिभंगवन्निष्ठाशून्यो न बभूव । तत्परिणामात्सः वरुणपाशेन मुक्तो जातः । भगवता विष्णुना तेन रसातलस्य राज्यमपि सम्प्राप्तम् । संक्षेपेणेयमेवास्ति वामनावतारस्य कथा । अस्यां कथायां "धर्मो रक्षति रक्षितः" इत्युक्तिः चरितार्था जाता । धर्मरक्षार्थं भगवता विष्णुना भिक्षासदृशी निन्दनीयाऽपि वृत्तिः स्वीकृता । अतः वयमपि सर्वे स्वधर्मस्य स्वसंस्कृतेः रक्षणार्थं बद्धपरिकरा सदैव सचेष्टिताश्च भवेम । इति ।

पैंड भूमि मांगी । दैत्यगुरु शुक्राचार्य ने विष्णु की यह माया जानली और असुरराज को भूमि देने को निषेध कर दिया । बलि राजा तो पूर्वप्रदत्त वचन के अनुसार भूमि के प्रदान के लिये याथापूर्व सुसिद्ध था । विष्णु ने दो पावों से (कदमों से) भूलोक और स्वर्गलोक नाप कर ये दोनों लोक इन्द्र को दे दिये । तीसरे पांव के नापने के लिये उस नृपति के पास कुछ भी अवशिष्ट नहीं था । इसके परिणाम से बलिनृपति का पुण्यक्षय होगया । अनुचित भी उसने अपने गुरु के वचन को नहीं पाला इसलिये उसके दुष्परिणाम से यह क्षीण बलवाला बलि वरुणपाश से बद्ध होगया ।

सम्पूर्ण ऐश्वर्य से भ्रष्ट हुवा भी वह बलिराजा भगवत निष्ठा से शून्य नहीं हुआ । उसके परिणाम से वह वरुणपाश से मुक्त होगया । भगवान् विष्णु से उसे रसातल का राज्य भी प्राप्त हुआ । संक्षेप में यह ही वामनावतार की कथा है । इस कथा में "धर्म रक्षा करने पर (वह धर्म) व्यक्ति की रक्षा करता है" यह उक्ति चरितार्थ होती है । धर्म की रक्षार्थ भगवान् विष्णु ने भिक्षा जैसी निन्दनीय भी वृत्ति स्वीकार की । इसलिये हम भी सब स्वधर्म और सस्कृति की रक्षा के लिये कमर बांध कर सदैव सचेष्ट होवें । इति ।

भरतवंशीयो श्रीरन्तिदेवः

सुप्रसिद्धस्य दुष्यन्तनृपतेः पुत्रः चक्रवर्ती सम्राट् भरत आसीत्। सः दिग्विजये किरात हूणान् यवनानांध्रान् कङ्कान् खशाञ्छकाञ्च म्लेच्छनृपान् रणे जघान। तस्मिन्नेव कुले सङ्कृतेः पुत्रो रन्तिदेवो बभूव। एषः चन्द्रनगरे राज्यं प्रकुर्वाणः सदा परोपकारनिरतश्चासीत्। तस्य शासने प्रजाजनाः सुखिनः निरामयाः दुःखरहिताश्चासन्।

एकस्मिन् वर्षे तस्य राज्ये घोरा अनावृष्टिः जाता। अतः सर्वाणि क्षेत्राणि तृणधान्यशून्यानि बभूवुः। जलाशयान्यपि जलरहितानि जातानि। क्षुधातृषार्ता प्रजाजनाः स्थाने स्थाने गतप्राणाः दृष्टिपथे आयान्ति स्म। स्वप्रजायां इमां दुर्दशां विलोक्य रन्तिदेवो दुःखार्तो जनदुःखनिवारणार्थं सचिन्तो बभूव। तेन राजकोषस्य सर्वमपि द्रव्यराशिं अन्नागारस्य सर्वमपि गोधूमयवोदनादिधान्यानां भाण्डार समूहानि प्रजाजनेभ्यः वितरितानि, किन्त्वनेनापि तस्य प्रजाजनस्य अभाव-

भरतवंशीय श्रीरन्तिदेव

सुप्रसिद्ध दुष्यन्त राजा के पुत्र चक्रवर्ती सम्राट् भरत थे। उनने दिग्विजय में किरात, हूण, यवन, आंध्र, कङ्क, खश, शक और म्लेच्छ राजाओं को युद्ध में पराजित किया था। उसी कुल में सङ्कृति का पुत्र रन्तिदेव हुआ। वह चन्द्रनगर में राज्य करता हुआ सदा परोपकार में निरत था। उसके राज्य में प्रजाजन सुखी निर्विघ्न और दु.ख रहित थे।

एक बार उसके राज्य में घोर अनावृष्टि हुई। इसलिये सारे ही खेत तृण धान्य से शून्य हो गए। जलाशय भी जलशून्य होगए। भूख प्यास से पीडित प्रजाजन स्थान २ पर मरे हुए दिखाई देने लगे। अपनी प्रजा की इस दुर्दशा को देख कर रन्तिदेव दुःख से पीडित होकर जनता के दुःख के निवारण के लिये सचिन्त होगया। उसने राजकोष के सभी धन को और अन्नागारों के सभी गेहूँ, जो, चांवल आदि भण्डार समूहों को प्रजाजनो को वितरित कर दिया। किन्तु इससे उनके प्रजाजन की अभावपूर्ति नहीं हुई। कोष तथा अन्न

पूर्तिः न जाता । कोषं अन्नभाण्डारं च निःशेषं दृष्ट्वा स नृपतिरन्तिदेवः राजभवनं परित्यज्य तपश्चर्यार्थं वनमध्ये जगाम । तत्र स घोरां तपश्चर्यां चकार । तस्य राज्ञः सम्पूर्णं शरीरमुग्रतपश्चर्यायाः परिणामेन अस्थिशेषमात्रमवशिष्टम् । तस्य नेत्रज्योतिः क्षीणं जातम् । इन्द्रियाण्यपि शिथिलानि बभूवुः । अस्यामवस्थायामपि तं तपश्चर्यायां लीनं विलोक्य भगवान् श्रीनारायणः तस्योपरि प्रसन्नो जातः उग्रतपश्चर्यानिरतस्य रन्तिदेवस्य सम्मुखमागत्य सः तं सम्बोध्योवाच, "ब्रूहि ! राजन् ! किं वाञ्छसि ? स्वसम्मुखं भगवन्तं विलोक्य सुप्रसन्नेन रन्तिदेवेन तस्य स्तुतिगानं कृतम् । तदनन्तरं करबद्धेन श्रीरन्तिदेवेनेदमेव याचितं "प्रभो ! अहं राज्यं, भोगं पुनर्भवमपि च न याचे, अहन्तु दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनमेव वाञ्छामि । भगवता नारायणेनापि "तथाऽस्तु इत्युक्त्वा निगदितं "यत्त्वया परहितार्थमेव वरयाचना कृता अतः तव तपश्चर्याऽपि सफला जाता ।"

भण्डार को समाप्त हुआ देखकर वह राजा रन्तिदेव राजभवन छोडकर तपश्चर्या करने को जगल में गए । वहां उनने घोर तपश्चर्या की । उस राजा का सम्पूर्ण शरीर उग्र तपश्चर्या के परिणाम स्वरूप अस्थिशेष मात्र बच गया । उनकी नेत्र ज्योति क्षीण होगई । इन्द्रियाँ भी शिथिल होगई । इस अवस्था में भी उनको तपश्चर्या में लीन देख कर भगवान् श्री नारायण उनके सम्बोधन करके बोले, "बोलो, राजन् ! क्या चाहते हो !" अपने सम्मुख भगवान् को देख कर सुप्रसन्न रन्तिदेव ने उनका स्तुति गान किया । उसके पश्चात् करबद्ध श्रीरन्ति देव ने यही याचना की कि "प्रभो ! मैं राज्य, भोग, पुनर्जन्म भी नहीं चाहता, मैं तो दुःखतप्त प्राणियों के पीडा का नाश हो यही चाहता हूं ।" भगवान् नारायण ने भी "वैसा ही हो" यह कर कहा कि "तुमने परहित में ही वर मांगा है अतः तुम्हारी तपश्चर्या भी सफल हुई ।"

भगवता नारायणेन वरं प्राप्य परमेण हर्षितेन श्रीरन्तिदेवेन पुनः तस्य नारायणस्य वन्दना कृता । तदनन्तरं

भगवान् नारायण से वर प्राप्त करके परम हर्षित श्री रन्तिदेव ने फिर उन नारायण की वन्दना की । इसके पश्चात् श्री नारायण

श्रीनारायणः तस्य सम्मुखात् अन्तर्धानो बभूव। रन्तिदेवस्य पत्न्या तस्य कृते भोजनं प्रेषितम्। श्रीरन्तिदेवो बहुषु मासेषु निराहर एवासीत्। स्वसम्मुखं क्षीरादीनि सुस्वादूनि व्यञ्जनानि विलोक्य तेन तत्क्षणमेव तं व्यञ्जनं भगवतः नारायणस्य कृते समर्प्य यदा तेन स्वोदरस्थे जठराग्निमध्ये हवनार्थं निजदक्षिणो हस्त अन्नग्रहणार्थं प्रसारितः तदा एको वृद्धः अनेकैः श्वभिः अनुगम्यमानः तत्रोपस्थितो बभूव। रन्तिदेवं सम्बोध्य तेनोक्तम्, राजन् मत्सदृशा मया सह एते सर्वे श्वानः विगतेभ्यः बहुदिवसेभ्यः क्षुधार्ताः सन्ति। अस्मभ्यं भोजनं देहि अनेन अन्नदानेन तव कल्याणं भविष्यति।" अतिथिं दृष्ट्वा प्रसन्नेन श्रीरन्तिदेवेन स्वसम्मुखे निक्षिप्तं सर्वमपि खाद्यपदार्थं तस्मै वृद्धाय समर्पितम्। क्षुधार्तस्य तस्य रन्तिदेवस्येदं अतिथिजनस्य कृते भोजनसमर्पणं विलोक्य सहसा आकाशत् देवैः तत्क्षणमेव पुष्पवृष्टिः कृता। सः वृद्धः प्रच्छन्नो बभूव। पुनः रन्तिदेवस्य सम्मुखं भगवान्नारायणः समुपस्थितो जातः। भगवान् उवाच" राजन्! तव परीक्षार्थमेव मया स वृद्धः प्रेषित आसीत्। त्वं महानसि, तव अन्तःकरणमपि परमं विशाल-

उसके सामने से अन्तर्धान हो गए। रन्तिदेव की पत्नी ने उनके लिये भोजन भेजा। रन्तिदेव अनेक महीनों से निराहार ही थे। अपने सामने खीर आदि सुस्वाद व्यञ्जन देखकर उसी समय उस व्यञ्जन को भगवान् नारायण को समर्पित करके जब उनने अपने उदर में स्थित जठराग्नि में हवन करने को अपना दाहिना हाथ अन्न ग्रहण के लिये फैलाया तो एक वृद्ध अनेकों कुत्तों को साथ लिये वहां उपस्थित हुआ। रन्तिदेव को सम्बोधित करके उसने कहा, "राजन्! मेरे समान मेरे साथ के ये सब कुत्ते विगत बहुत दिनों से भूख से पीडित हैं। हमारे लिये भोजन दो. इस अन्नदान से आपका कल्याण होगा।" अतिथि को देखकर प्रसन्न श्री रन्तिदेव ने अपने सम्मुख रखे सारे खाद्य पदार्थ को उस वृद्ध को प्रदान कर दिया। भूख से पीडित उस रन्तिदेव के इस अतिथि जनों के लिये इस प्रकार के भोजन समर्पण को देखकर सहसा आकाश से देवों ने उसी क्षण पुष्पवृष्टि की। वह वृद्ध गायब हो गया। पुनः रन्तिदेव के सम्मुख भगवान् नारायण समुपस्थित हुए। भगवान् बोले, "राजन्! तुम्हारी परीक्षा के लिये ही मैंने वह वृद्ध भेजा था। तू महान् है तेरा अन्तः करण भी परम

मस्ति । गच्छ ! स्वराज्यं प्राप्य सुखोपभोगं कुरु ।" पुनः भगवद्दर्शनं प्राप्य श्रीरन्तिदेवो कृतकृत्यो बभूव । तस्य राज्ञः तपःप्रभावात्तस्य प्रजाजनाः सुखिनो बभूवुः । सम्पूर्णेऽपि तस्य राज्ये अन्नधनादिकस्य भौतिकवैभवस्य आध्यात्मिकसमुन्नतेर्विस्तारोऽपि च सर्वत्र सम्बभूव । सत्यमुक्तम् विद्वज्जनैः परोपकाराय सतां विभतयः । इति ।

विशाल है। जाओ ! अपना राज्य प्राप्त करके सुखोपभोग करो।" फिर से भगवद्दर्शन प्रभु करके श्रीरन्तिदेव कृतकृत्य होगया। उस राजा के तप के प्रभाव से प्रजाजन सुखी हो गये। सम्पूर्ण उसके राज्य में अन्नधन आदि भौतिक वैभव की और आध्यात्मिक समुन्नति का विस्तार भी सर्वत्र होगया। सच कहा है 'सत्पुरुषों का ऐश्चर्य परोपकार के लिए ही होता है। इति।'

नृगनृपतिकथा

एकदा यदुकुमारकाः सम्बप्रद्युम्न-चारुभानुगदादयः विहर्तुं एकस्मिन्नुपवने जग्मुः। सुचिरं क्रीडित्वा ते सर्वे पिपासिताः जलं विचिन्विन्तः एकस्मिन् निरुदके कूपे एकं गिरिसदृशमद्भुतं कृकलासं वीक्ष्य विस्मितमानसाः तस्योद्धरणे बहून् यत्नान् चक्रुः किन्तु तं समुद्धर्तुं नाशक्नुवन्। समुत्सुकाः ते सर्वे श्रीकृष्णस्य समीपमागत्य तस्य च कृकलासस्य विषये कथयामासुः। श्रीकृष्णः तत्रागत्य तं कृकलासं वीक्ष्य वामेन करेण अनायासमेव तमुज्जहार। सोऽपि जीवः श्रीकृष्णस्य करस्पर्शेन निजकृकलासरूपं तत्क्षणमेव विहाय सन्तप्तहेमवत् चारुमनुजो बभूव। तस्य कृकलासस्य नरदेहधारणस्य कारणं जानन्नपि श्रीकृष्णः सर्वान् यदुकुमारान् विज्ञापयितुं तं नरं पपृच्छ। हे महाभाग नरोत्तम त्वं कोऽसि ? कतमेन कर्मणा इमां कृकलासयोनिं सम्प्रापितः, यदि त्वं वक्तुमुचितं मन्यसे तर्हि स्ववृत्तान्तं वद।"

नृगराजा की कथा

एक बार यदुवंश के कुमार सम्ब, प्रद्युम्न, चारुभानु, गद इत्यादि एक उपवन में विहार (सैर) करने को गए। बहुत समय तक खेलकर वे सब प्यास लगने के कारण जल ढूढते हुए एक सूखे कुए में एक पर्वतसदृश बडे अद्भुत गिरगिट को देखकर आश्चर्यचकित उसके कुए से बाहर निकालने के बहुत से यत्न किए किन्तु उसे निकालने में सफल नहीं हुए। इस गिरगिट को निकालने के इच्छुक वे सभी श्रीकृष्ण के समीप आए और उस गिरगिट के विषय में बताया। श्रीकृष्ण ने वहां आकर उस गिरगिट को देखकर बांए हाथ से अनयास ही उसको बाहर निकाल दिया। वह प्राणी भी श्रीकृष्ण के हाथ के स्पर्श से अपना गिरगिट का रूप उसी समय छोड़कर तपे सोने की तरह सुन्दर वर्ण का मनुष्य होगया। उस गिरगिट के नरदेह धारण का कारण जानते हुए भी श्रीकृष्ण ने सारे यदुकुमारों को जानकारी देने को उस व्यक्ति को पूछा। हे महाभाग! नरश्रेष्ठ! तुम कौन हो ? किस कारण से इस गिरगिट की योनि को प्राप्त हुए, अगर तुम यह बताना उचित समझते हो तो बताओ"।

श्रीकृष्णं प्रणिपत्य तेऽपि स्ववृत्तान्तं निम्नप्रकारेणोक्तम् । "हे प्रभो! अहं इक्ष्वाकुतनयो नृगनामको नरेन्द्रोऽस्मि । दानिजनेषु सुविख्यातेन मया पयस्विन्यः शीलरूपगुणोत्पन्नाः सवत्सा असंख्याः गावः गुणशीलवृद्धेभ्यः द्विजपुङ्गवेभ्यः प्रदत्ता आसन् ।

श्रीकृष्ण को प्रणाम करके उसने भी अपना वृत्तान्त निम्न प्रकार से बताया । " हे प्रभो ! मैं इक्षवाकु का पुत्र नृग नामका राजा हूं । दानियों में सुविख्यात मैंने दूधवाली शील रूप आदि गुणों से युक्त बछडेवाली असंख्य गायें गुणवान् और शीलवान श्रेष्ठ ब्राह्मणों को दी थी ।

एकदा कस्यचिद्विजमुख्यस्य भ्रष्टा गौर्मम गोधने सम्प्राप्ता । अविज्ञाता च मया सा गौः एकद्विजाय प्रदत्ता । तां नीयमानां गां विलोक्य तत्स्वामी "ममेति" तमुवाच । तेनाऽपि ब्राह्मणेनोऽक्तम् यत् 'इयं गौः मम, नृगो मह्यं इमां दत्तवानिति' । विवदमानौ तौ विप्रौ माम् प्राप्य ऊचतुः यद्भवान् " दातास्त्यथवाऽपहर्तास्ति " तं विवादं श्रुत्वा मे भ्रमोऽभवत् । उभौ विप्रौ ममानुनयं तिरस्कृत्य तस्या धेनोः स्थाने उत्तमानां गवां लक्षमपि न स्वीचक्रतुः । नान्यद्गावमिच्छामीत्युक्त्वा उभौ विप्रौ जग्मतुः ।

एकबार किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण की भटकी हुई गाय मेरे गोधन में आकर मिल गई । यह न जानते हुए मैंने उस गौ को एक ब्राह्मण को देदी । उस लायी हुई गाय को देखकर उसका स्वामी " मेरी है " यह उसे बोला । उस ब्राह्मण ने भी कहा कि "यह गाय मेरी है नृग ने मुझे दी है ।" विवाद करते हुए दोनों ब्राह्मण मेरे पास आकर बोले कि आप दान देने वाले हैं अथवा अपहरण करने वाले हैं ।" उस विवाद को सुन कर मुझे भ्रम हो गया । दोनों ब्राह्मणो ने मेरे अनुनय को तिरस्कृत करके उस गाय के स्थान पर उत्तम लाख गायें भी लेना स्वीकार नहीं किया । "दूसरी गाय नहीं लेना है" यह कह कर दोनों ब्राह्मण चले गए ।

कालान्तरे आयुष्यक्षीणे सति यमदूतैः 'यमसमीपमानीतो तत्राऽहं यमेन पृष्टः, हे नृग ! पूर्वं त्वमशुभं कर्मफलं भुङ्क्षे अथवा शुभं कर्मफलम्' मयाऽपि पूर्वमशुभं प्रोक्तम् । अत एवेदं कृकलासजीवनम् प्राप्तम् । कृकलासशरीरेऽपि

समय बीतने के पश्चात् आयु क्षीण होने पर यमदूतों द्वारा यमराज के समीप लाने पर वहां यम ने मुझे पूछा, "हे नृग ! पहले तुम अशुभ कर्मफल भोगोगे अथवा शुभ कर्मफल ?" मैंने भी पहले अशुभ भोगूंगा यह कहा । इसीलिये गिरगिट का जीवन प्राप्त

भगवद्दर्शनार्थिनः मे पूर्वजन्मस्मृतिर्नाद्यापि विध्वस्ता जाता। अद्य अहं तव करस्पर्शेन नरदेहं पुनः प्राप्य तव दर्शनेन च विगतापराधोऽस्मि। श्रीमुकुन्दस्य स्तुतिं सम्पाद्य विमानमारुह्य सः नृगनृपतिः वैकुण्ठं ययौ। अनेन सिद्ध्यति यत् स्वजीवने एकमपि केवलं कृतमपराधं विना दण्डेन न शाम्यति। अतः अस्माभिः सर्वदा सावधानतया निरपराधं स्वजीवनं यापनीयमिति।

किया। गिरगिट के शरीर में भी भगवान् के दर्शन करने की प्रवल आकांक्षा होने के कारण मेरी पूर्वजन्म की स्मृति आज भी विनष्ट नहीं हुई। आज मैं आपके करस्पर्श से नर देह को पुनः प्राप्त करके आपके दर्शन से अपराध-रहित हो गया हूँ।" श्रीमुकुन्द की स्तुति करके विमान पर बैठकर वह नृगनृपति बैंकुण्ठ को चले गए। इससे सिद्ध होता है कि अपने जीवन में केवल एक भी किया गया अपराध विना दण्ड के शान्त नहीं होता। अतः हम लोगों को सदा सावधान होकर अपना जीवन निरपराध (रखकर) व्यतीत करना चाहिये। इति।

विश्वामित्रचाण्डालयोःकथा

त्रेताद्वापरयुगयोः सन्धिकाल आसीत्। दैववशात्सम्पूर्णेऽपि भूमण्डले जलवृष्टिः न जाता। द्वादशवर्षपर्यन्तं समस्तेऽपि भूप्रदेशे च जलवर्षणस्याभावेन घोरं दुर्भिक्षमापतितम्। सर्वत्र कृषिक्षेत्राणि तृणधान्यशून्यान्यासन्। गवां रक्षा दुर्लभा बभूव। सर्वत्र आपणविपण्य-शून्यानि नगराणि दृष्टिपथम् आयान्ति स्म। क्षुधार्तानां जनानां आर्तनादः सर्वत्र व्याप्तआसीत्। नगराणि प्रायः जन-शून्यानि, ग्रामाः ग्रामस्थगृहाश्च निर्जनाः तीक्ष्णनिदाघेन दग्धप्रायाः बभूवुः। क्षुधार्ताः प्राणिनः सम्मुखमागतं प्राणिनं वीक्ष्य स्वक्षुधानिवृत्त्यर्थं तस्योपरि आघातं कुर्वन्ति स्म। एतादृशे सुदीर्घे दुर्भिक्ष-समये धर्मस्य तिरोधानात् क्षुधार्ताः जनाः सम्मुखमागतं जनमपि खादन्ति स्म।

एषु दिवसेषु बुद्धिमतामग्रगण्यो महर्षिः श्रीविश्वामित्रोऽपि क्षुधार्तः आश्रमं विहाय खाद्यमन्विष्यन्नितस्ततः

विश्वामित्र और चाण्डाल की कथा

त्रेता तथा द्वापर युग का सन्धि (बीचका) काल था। दैववश सम्पूर्ण भूमण्डल पर जल वर्षा नहीं हुई थी। बारह वर्ष तक समस्त भूप्रदेश पर जलवर्षा का अभाव होने से घोर दुर्भिक्ष पडा हुआ था। सर्वत्र कृषि के खेत तृण और अनाज से शून्य थे। गायों की रक्षा दुर्लभ थी। सर्वत्र हाट और दुकानों से शून्य नगर दिखाई देते थे। भूख से पीडित मनुष्यों का आर्तनाद सर्वत्र व्याप्त हो रहा था। नगर प्रायः जनशून्य होगए थे, गांव और गांव में बने घर निर्जन होकर तेज धूप के कारण प्रायः जल गये थे। भूख से पीडित प्राणी सम्मुख आए प्राणी को देखकर अपनी क्षुधानिवृत्ति के लिए उसके ऊपर आघात कर देते थे। इस प्रकार के लम्बे दुर्भिक्ष के समय में धर्म के तिरोधान (विलुप्तप्राय) हो जाने से भूख से पीडित लोग सामने आए मनुष्य को भी खा जाते थे।

इन दिनों में बुद्धिमानों में अग्रगण्य महर्षि श्रीविश्वामित्र भी भूख से पीडित आश्रम को छोड़कर खाद्यपदार्थ को ढूंढते हुए इधर उधर

अटति स्म । एकदा स एकस्मिन्वने प्राणिवधकारकाणां हिंसकानां चाण्डालानां ग्रामे आगतोऽभूत् । तस्मिन् लघुग्रामे आहारमन्विष्यमाणो क्षुधार्तः श्रीविश्वामित्रः प्रतिगृहं गत्वा भिक्षां ययाचे । किन्तु तेन एकं खाद्यकणमपि न प्राप्तम् ।

घूम रहे थे । एक बार वे एक वन में प्राणियों का शिकार करनेवाले हिंसक चाण्डालों के गांव में आए । उस छोटे से गांव में आहार को ढूंढते हुए भूख से पीडित श्रीविश्वामित्र ने प्रत्येक घर में जाकर भिक्षा मांगी । किन्तु उसने एक भी खाद्य कण प्राप्त नहीं किया ।

सहसा तेन विश्वामित्रेण एकस्मिन् गृहे सद्यः कर्त्तिता श्वानजङ्घा दृष्टा । मध्यरात्रिपर्यन्तं तत्रैव स्थितो विश्वामित्रः यदा रात्रौ सर्वे गृहस्था जना निद्राधीनाः संजाता स्तदा सः तस्मिन् गृहे तस्य मांसखण्डस्य प्राप्त्यर्थं प्रविष्टोऽभूत् । तस्य गृहप्रवेशेन जागृतः स चाण्डालो मध्यरात्रौ गृहे प्रविष्टं जनं विलोक्य उच्चस्वरेणोक्तवान् "कोऽसि त्वमिति ।" समीपमागतं विश्वामित्रं ज्ञात्वा करबद्धः सः चाण्डालः तं विनम्रभावेन प्रणम्य पप्रच्छ । "भो ब्रह्मन् ! मध्यरात्रौ गृहं प्रविश्य किं चेष्टसे ? किं वाञ्छति भवान् ?" विश्वामित्रेणोक्तम्, "हे बन्धुवर ! अहं बुभुक्षितोऽस्मि । क्षुधार्तस्य व्याकुला मम प्राणाः देहं विमुच्य गन्तुमिच्छन्ति । अहं जानामि यत् मध्यरात्रौ चोरवत् कस्यापि जनस्य गृहे प्रविश्य गृहे स्थितस्य द्रव्यस्यापहरणं ना-

सहसा उन विश्वामित्र ने एक घर में तत्काल काटी हुई कुत्ते की जङ्घा देखी । मध्यरात्री पर्यन्त वहीं ठहर कर विश्वामित्र ने जब रात्री में सभी गृहस्थजन निद्राधीन हो गए तब वे उस घर में उस मांसखण्ड को प्राप्त करने के लिए घुसे । उनके घर में प्रविष्ट होने से जागृत हुआ वह चाण्डाल मध्यरात्री में घर में प्रविष्ट हुए जन को देख कर ऊंचे स्वर से बोला, "तू कौन है ? समीप में आए हुये विश्वामित्र को पहचान कर हाथ जोड़ कर उस चाण्डाल ने विनम्र भाव से प्रणाम करके पूछा, हे ब्रह्मन् ! मध्यरात्री में घर में घुस कर क्या करते हैं ? आप क्या चाहते हैं ?"

विश्वामित्र ने कहा, "हेबन्धुवर ! मैं भूखा हूं । भूख से पीडित हुए मेरे व्याकुल प्राण देह को छोड़कर जाना चाहते हैं । मैं जानता हूं कि मध्य-रात्रि में चोर की तरह किसी भी मनुष्य के घर में घुस कर घर में स्थित द्रव्य का अपहरण धर्म के अनुकूल नहीं

स्ति धर्मानुकूलम्, किन्त्वहं अखाद्यम-पोदं श्वानस्य मांसपिण्डं नीत्वा गमिष्यामि ।" चाण्डालेनोक्तम्, "भो महर्षे ! इदं तु नास्ति धर्मसम्मतम् । प्रथमं तु इदं चाण्डालस्य द्रव्यम्, द्वितीयमस्तीदम-भक्ष्यम्, तृतीयं चौर्यकर्मणास्य द्रव्यस्या-पहरणं सर्वथा धार्मिकदृष्ट्या निन्दितम-प्यस्ति ।" विश्वामित्रेणोक्तम्, "अहं भोजनस्याभावेन विगतेषु बहुषु दिवसेषु इतस्ततः अटन्नपि सुदीर्घकालात् किमपि खाद्यमप्राप्य प्राणरक्षार्थमेवेदं मांसपिण्डं विलोक्य अस्य प्राप्त्यर्थमत्रागतोऽस्मि ।" शास्त्रेऽप्युक्तमस्तिः—

येन येन विशेषेण कर्मणा येन केनचित् ।
अभ्युज्जीवेत् साद्यमानः समर्थो
धर्ममाचरेत् ।।

(शान्तिपर्व १४१ । ६३)

साद्यमानः येन येन विशेषेण कर्मणा येन केनचित् अभ्युज्जीवेत् समर्थो धर्म-माचरेत् । अतः शास्त्रादेशानुसारमहं येन केनचित् प्रयत्नेन प्रथमं प्राणरक्षां कृत्वा तदनन्तरं दैनन्दिनं व्रतोपवासा-दिकं कृत्वा पापकर्मणः प्रायश्चितं करिष्यामि ।

चाण्डालेनोक्तम् भगवन् ! इदं कुक्कुरमांसभक्षणं भवादृशानां कृते

है. किन्तु मै खाने के अयोग्य भी इस कुत्ते के मांस पिण्ड को लेकर जाऊंगा ।' चाण्डाल ने कहा, " हे महर्षे ! यह कार्य धर्म सम्मत नहीं " प्रथम तो यह चाण्डाल का द्रव्य है, दूसरे यह खाने योग्य नहीं, तीसरे चोरी कर के इस द्रव्य का अपहरण करना सर्वथा धार्मिक दृष्टि से निन्दित भी है ।"

विश्वामित्र ने कहा, 'मैं भोजन के अभाव में विगत बहुत से दिनों से इधर उधर भटकता हुआ लम्बे समय से कुछ भी खाद्य पदार्थ न प्राप्त होने के कारण प्राणरक्षार्थ ही इस मांस पिण्ड को देखकर इसकी प्राप्ति के लिये आया हूँ । शास्त्र में भी कहा है:—

"भूख से पीडित जिन जिन विशेष कर्मों के द्वारा जिस किसी भी विधि से जीवन रक्षा करे (और) समर्थ होने पर धर्म का आचरण करे ।"

चाण्डाल ने कहा, भगवन् यह कुत्ते का मांस भक्षण करना आप जैसे लोगों के लिए

दुःखकरं पातकमस्ति । अतः अनेन निषिद्धेन पापकर्मणा स्वात्मानं रक्षतु भवान् ।

दुःख कर पातक है । अतः इस निषिद्ध पापकर्म से आप अपनी रक्षा करें ।"

विश्वामित्रेणोक्तम्, 'त्वं धर्मोपदेशस्य विषये अधिकृतः पुरुषो नाऽसि ? अहं जानामि कस्यां परिस्थित्यां किं करणीयमस्ति ।'

विश्वामित्र ने कहा, "तुम धर्मोपदेश के विषय में अधिकृत पुरुष नहीं हो, मैं जानता हूं किस परिस्थिति में क्या करना चाहिये ।"

तदनन्तरं वेदोक्तेन विधिना अग्निप्रज्वालनं कृत्वा तेन विश्वामित्रेण देवकर्मपितृकर्मादिकं विधाय इन्द्रादिदेवानामावाहनं कृतम् । यदा तेन ऋषिणा विधिपूर्वकं तेषां देवानां कृते तस्य हविष्यान्नस्य पृथक्पृथगंशा यज्ञाग्नौ अर्पिताः, तदा सन्तुष्टैः इन्द्रादिभिस् तत्क्षणमेव सर्वत्र भूभागे जलवृष्टिः कृता । अनेन कर्मणा तत्र समस्ते क्षितितले अन्नादयः औषधादयश्च समुत्पन्नाः बभूवुः । पृथ्वीतलस्य सर्वे प्राणिनः पुनः अन्नादिकं औषधादिकं च संप्राप्य क्षुधानिवृत्ता रोगमुक्ताश्च संजाताः ।

इसके पश्चात् वेदोक्त विधि से अग्नि प्रज्वलित करके उन विश्वामित्र ने देवकर्म पितृकर्म आदि करके इन्द्र आदि देवों का आह्वान किया । जब उन ऋषि ने विधि पूर्वक उन देवों के लिये हविष्यान्न के पृथक् पृथक् अंश यज्ञाग्नि में अर्पित किए तब सन्तुष्ट हुए इन्द्रादि ने उसी क्षण सर्वत्र पृथ्वीतल पर जलवर्षा करदी । इस कर्म से वहां समस्त पृथ्वीतल पर सारे प्राणी फिर से अन्नादिक और औषध आदि को प्राप्त करके भूख से और रोगों से निवृत्त हो गये ।

भगवान् विश्वामित्रोऽपि सुदीर्घकालिकनिराहारव्रतित्वात् (कठोरतपश्चर्यायाः परिणामात्) दग्धकल्मषः सन् अत्यद्भुतं सिद्धत्वं प्राप्तवान् । तेन द्विजश्रेष्ठेण तद् हवनं सम्पाद्य तस्य हविष्य-

भगवान् विश्वामित्र ने भी बहुत लम्बे समय तक निराहार व्रत करने के कारण (कठोरतपश्चर्या के परिणाम स्वरूप) कल्मष (पाप) के जल जाने के कारण अद्भुत सिद्धत्व प्राप्त कर लिया । उस द्विज श्रेष्ठ ने उस हवन

द्रव्यस्यास्वादनं विनैव देवान् पितॄंश्च संतोष्य तेषामनुकम्पयैव पवित्रं भोजनं संप्राप्य स्वजीवनरक्षां चकार। शान्तिपर्वे भीष्मपितामहेनाप्युक्तम्—

तस्मात् कौन्तेय ! विदुषा
धर्माधर्मविनिश्चये ।
बुद्धिमास्थाय लोकेऽस्मिन्
वर्तितव्यम् कृतात्मना ॥

तस्मात् कौन्तेय कृतात्मना विदुषा अस्मिन् लोके धर्माधर्मविनिश्चये बुद्धिमास्थाय (विश्वामित्रवत्) वर्तितव्यम् । इति ।

को करके उस हविष्यान्न के आस्वादन के बिना ही देवताओं और पितरों को सन्तुष्ट करके उनकी अनुकम्पा (दया) से ही पवित्र भोजन प्राप्त करके अपनी जीवन रक्षा की। शान्ति पर्व में भीष्म पितामह ने भी कहा है :—

"इसलिये हे कुन्तीसुत (अर्जुन) इस संसार में धार्मिक व्यक्ति को धर्म और अधर्म के विषय में संदेह होने पर बुद्धि का सहारा लेकर बर्ताव करना चाहिये।" इति।

श्रीकृष्णः सुदामा च

श्रीकृष्णस्य एकः सखा सुदामा-नामको ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः विरक्तः जितेन्द्रियो गृहस्थश्चासीत् । तस्य भार्या पतिव्रता क्षुत्क्षामा स्वगृहस्य दारिद्र्यं असहमाना एकदा स्वपतिमभिगम्यो-वाच, ' ब्रह्मन् ! भवतः सखा श्रीकृष्णः साक्षाच्छ्रियः पतिः ब्रह्मण्यः शरण्य-श्चास्ति । हे महाभाग ! साधूनां परा-यणं तमुपेहि, स त्वां भूरि द्रव्यं दास्यति । सोऽधुना द्वारवत्याम् भोज-वृष्ण्यन्धकेश्वरोऽस्ति । अतः स त्वयाऽ-वश्यं द्रव्यार्थं प्रार्थितव्यः ।' एवं स्व-भार्यया बहुशः मृदु प्रार्थितः सः मनसा गमनाय मतिं दधे । तेनोऽक्तम्, भद्रे ! यदि किञ्चिदुपायनमस्माकं गृहे स्या-त्तर्हि तस्य श्रीकृष्णस्य कृते दीयताम् । तया भार्ययाऽपि समीपस्थितान् विप्रान् याचित्वा चत्वारः मुष्टीन् तण्डुलानादाय चैलखण्डे तान् बध्वा भर्त्रे उपायनं प्रादात् ।

सोऽपि विप्रवरः तान् तण्डुलानादाय

श्रीकृष्ण सुदामा

श्रीकृष्ण के एक सखा सुदामा नामके ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ताओ में श्रेष्ठ, विरक्त, जितेन्द्रिय और गृहस्थ थे । उनकी स्त्री पति-व्रता, भूखीरहने से कृशकाय अपने घर के दारिद्र्य को न सहन करती हुई एकबार अपने पति के पास आकर बोली, 'हे ब्रह्मन् ! आपके सखा श्रीकृष्ण साक्षात् लक्ष्मी के पति ब्राह्मणों के परमभक्त है । हे महाभाग ! साधुओं के आश्रय उनके पास जाओ, वे आपको बहुतसा धन देंगे । वे अभी द्वारकापुरी में भोज, वृष्णी और अन्धकों के स्वामी है । अतः वे द्रव्य के लिए अवश्य प्रार्थना करने योग्य है । इस प्रकार अपनी भार्या के द्वारा अनेक बार मृदु प्रार्थना करने पर उनने श्रीकृष्ण के पास जाने का मनमें निश्चय किया । उनने कहा, भद्रे ! अगर कुछ भेट देने योग्य वस्तु अपने घर में हो तो उन श्रीकृष्ण को देने हेतु लाओं । उन श्रीसुदामाजी की स्त्री ने भी पडोस में रहने वाले ब्राह्मणों के यहां से मांगकर चारमुट्ठी तण्डुल (चिवड़ा) लाकर चिथडे में उन्हें बांध कर अपने पति को भेंट देदी ।

वह ब्राह्मणश्रेष्ठ ने भी उस चिउडे को

द्वारकां प्रति प्रययौ ! श्रीकृष्णदर्शनं मह्यं कथं स्यादिति' चिन्तयन् स द्वारकापुरीं प्राप्तवान् । यदा स तां पुरीं प्राप्य श्रीकृष्णस्यावासं पृच्छन् राजप्रासादे प्रविष्टो बभूव तदा दूरात् तं विलोक्य रुक्मण्या सह पर्यङ्कमास्थितः श्रीकृष्णः सहसोत्थाय तस्य समीपं द्रुतगत्यागत्य मुदा तं दोर्भ्यामग्रहीत् । स्वप्रियस्य सख्युः विप्रर्षेरङ्गसङ्गातिनिर्वृ तः कमलेक्षणः श्रीकृष्णः प्रीतः सन्नानन्दाश्रुबिन्दून् व्यमुञ्चत् ।

लेकर द्वारका की ओर प्रस्थान कर दिया । 'श्रीकृष्ण का दर्शन मुझे किस प्रकार होगा । यह चिन्ता करते हुए वे द्वारकापुरी पहुँचे । जब वे उस पुरी में आए तो श्रीकृष्ण का निवास पूछते हुए राजमहल में चले गए । तब दूर से ही उनको देखकर रुक्मणीजी के साथ पलंग पर बैठे हुए श्रीष्ण तत्काल उठकर उनके (सुदामाजी के) समीप झट से आकर अत्यन्त हर्षित होते हुए उनको (श्रीसुदामाजी को) दोनों हाथों की बाहों में भर लिया । अपने प्रियमित्र विप्र ऋषि के अङ्गसङ्ग से गद्‌गद हुए कमललोचन भगवान् श्रीकृष्ण आनन्दाश्रु बिन्दू छोड़ने लगे ।

तदनन्तरं तं प्रियवयस्यं पर्यङ्के उपवेश्य स्वहस्ताभ्यां श्रीकृष्णेन तस्यपादप्रक्षालनं कृतम् । तस्य पादोदकं च भगवाँल्लोकपावनः शिरसाऽग्रहीत् । तस्य देहं दिव्यगन्धेन चन्दनागुरुकुंङ्कुमैश्च व्यलिम्पत् । एवं तं अभ्यर्च्य ताम्बूलं गां चावेद्य स्वागतवाक्यमब्रवीत् ।

इसके पश्चात् उस प्रिय सखा को पलंग पर बिठा कर अपने दोनों हाथों से श्रीकृष्ण ने उनका पाद प्रक्षालन किया । और उनका पादोदक उन लोकपाल भगवान् ने अपने मस्तक पर लगाया । उनकी देह को दिव्य गन्ध से चन्दन अगर और कुंकुम से लीप दिया । इस प्रकार उनकी अर्चना करके उनको ताम्बूल पान और गाय देकर वाणी द्वारा उनका स्वागत किया ।

कुचैलं मलिनं क्षीणकायं श्रीसुदामाख्यं द्विजवरं देवी रुक्मणी स्वयं चामरव्यजनेनार्चयत् । अन्तःपुरजनो श्रीकृष्णेन सप्रीत्या समर्चितमवधूतं दृष्ट्वा विस्मितोऽभूत् ।

मैले कपडेवाले मलिनशरीरवाले कृशकाय श्रीसुदामा नाम के ब्राह्मणश्रेष्ठ की देवी रुक्मणी भी स्वयं चमर डुलाकर सेवा करने लगी । अन्तःपुर के लोग श्रीकृष्ण द्वारा प्रीति पूर्वक अर्चना किए गए अवधूत को देखकर विस्मित हुए ।

श्रीकृष्णेनोक्तम्, हे ब्रह्मन् ! दत्त्वा दक्षिणाम् गुरुकुलाद् भवता समावृत्तेन स्वविवाहः कृतो न वा ? प्रायः गृहेषु धनेषु च ते चित्तमलिप्तमेवास्तीति मे विदितम् । कामैरहतचेतसः लोक-संग्रहार्थं त्वादृशा केचिदेव कर्माणि-कुर्वन्ति ।

श्रीकृष्णने कहा, हे ब्रह्मन् ! गुरुदक्षिणा देकर गुरुकुल से आकर आपने अपना विवाह किया या नहीं ? प्रायः घर में और धन में आपका चित्त अलिप्त ही है यह मुझे ज्ञात है। विषयों से विरक्त चित्तवाले आप जैसे कोई ही पुरुष लोकसंग्रह के लिए ही (निर्लिप्त) कर्म करते हैं।

पुनः प्रथमाश्रमस्य एकां घटनां स्मरन् श्रीकृष्ण उवाच 'हे ब्रह्मन् ! गुरु-संन्निधौ निवसतां अस्माकमेकं वृत्तं किं त्वया स्मर्यते ? यदा आवां गुरुदारैः निर्दिष्टौ इन्धनानयने गतौ । महा-रण्ये प्रविष्टे सति वर्षाकालं विनैव समये सुमहद् वातवर्षमभूत्, सूर्योस्तं गतवान्, दिशः तमसावृता र्बभूवुः, सर्वत्र च भूप्रदेशो जलमयो जातः ।

फिर ब्रह्मचर्याश्रम की एक घटना का स्मरण करते हुए श्रीकृष्णने कहा, 'हे ब्रह्मन्! गुरु के सन्निकट रहते हुए अपनी एक घटना को क्या आप स्मरण करते हैं ? जब हम दोनों गुरुपत्नी के द्वारा आज्ञा करने पर इन्धन (लकड़ी) लेने गए थे। महा वन में घुसने पर वर्षाकाल के बिना ही असमय में बहुत अधिक हवा और वर्षा हुई, सूर्यास्त होगया, दिशाओं में अन्धकार छागया और सर्वत्र भूप्रदेश जलमय होगया था।

आवां तत्र भृशं झञ्झावातप्रवाहैः निहन्यमानौ दिशोऽविदन्तौ परस्परं गृहीतहस्तौ वने परिभ्रमन्तावास्ताम् । निशावसाने सति यदा सूर्योदयोऽभूत्तदा कृष्णः सुदामा च द्वौ शिष्यौ रात्रौ वन-मध्यान्नागतवन्तौ' एतद् विदित्वा श्री-सान्दीपनिगुरुः स्वयमन्वेषमाणो वने आतुरौ आवाम् एकस्य वृक्षस्याधस्तले अपश्यत् । समीपमागत्य आचार्येणो-क्तम् किं त्वया स्मर्यते ? आचार्येणोक्त-

हम दोनों वहां अत्यधिक झंझोवात के प्रवाह द्वारा पिटते हुए दिशाज्ञान न होने के कारण आपस में हाथ पकड़े हुए जंगल में चक्कर लगाते रहे। रात्रि बीतने पर जब सूर्योदय हुआ तब, 'कृष्ण-सुदामा दोनों शिष्य रात्री में वन में गए नहीं लौटे, यह जानकर श्रीसान्दीपनि गुरु स्वयं खोजने के लिये निकले। वन में व्याकुल हम दोनों को एक वृक्ष के नीचे देखा। समीप में आकर आचार्य जो बोले क्या तुम्हे स्मरण है ? आचार्य ने

मासीद्, अहो ! हे पुत्रकौ युवामस्मदर्थे अतिदुःखितौ । प्राणिनामात्मा श्रेष्ठः किन्तु युवां तमप्यनादृत्य मत्-सेवापरायणौ अभूताम् । एतदेव हि सच्छिश्यैः कर्तव्यम् यत्तेषां विशुद्धभावेन स्वसर्वस्वं गुरोः कृते अर्पितं स्यात् । गुरुवर्येण तदनन्तरं हर्षोत्फुल्लहृदयेनेदमाशीर्वचनमुक्तम्, 'भो द्विजश्रेष्ठौ तुष्टोऽहम्, युवयोःमनोरथाः सत्याः सन्तु ।' इति । इत्थंविधान्यनेकानि प्रसङ्गानि गुरुवेश्मनि निवसतोः संजातानि । नास्त्यत्र संदेहो यत् गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णत्वमात्मसंतोषमपि च प्राप्नोति' । इति ।

कहा था, अहो ! हे बालको ! तुमने हमारे लिये बहुत दुःख झेले । प्राणियों के लिये लिये आत्मा श्रेष्ठ है किन्तु तुम दोनों ने उसका भी अनादर करके मेरी सेवा में परायण रहे । यही अच्छे शिष्यों का कर्तव्य है कि उनका विशुद्धभाव से अपना सर्वस्व गुरु के लिए अर्पण हो' । इसके पश्चात् गुरुवर्य ने हर्षो-त्फुल्ल हृदय से यह आशीर्वाद दिया था, हे द्विजश्रेष्ठो ! मै 'तुम पर संतुष्ट हूँ । आपके मनोरथ सफल हों' । इस प्रकार के अनेक-प्रसङ्ग गुरुघर में निवास करते हुए हो गए इसमें संदह नहीं कि गुरु के अनुग्रह से ही मनुष्य पूर्णता को और आत्मसंतोष को भी प्राप्त करता है ।' इति ।

श्रीकृष्णः स्वप्रियं सुदामाब्राह्मणं प्रोवाच, "भवता स्वगृहात् मदर्थं किमुपायनयानीतम् इति' पुनः तेनोक्तम् 'यो मे भक्त्या पत्रं पुष्पं फलं तोयं वा प्रयच्छति प्रयतात्मा तदहं भक्त्युपहृतं अश्नामि' । इत्युक्तोऽपि स सुदामा द्विजः व्रीडितः श्रियः पत्ये श्री कृष्णाय तण्डुलप्रसृतिं अवाङ्मुखः न प्रायच्छत् । सर्वभूतात्मदृक् श्रीकृष्णः तस्य सुदाम्न आगमनकारणं विज्ञाय अचिन्तयत्, 'अयं श्रीकामः पुरा मां नाऽभजत् । पतिव्रतायाः पत्न्याः प्रियचिकीर्षया माम् प्राप्तोऽस्ति । अतः

श्रीकृष्ण अपने प्रियमित्र सुदामा ब्राह्मण को हंस कर बोले, 'आपने अपने घर से मेरे लिये क्या भेंट लाये' । फिर उनने कहा 'जो मुझको भक्तिपूर्वक पत्र, पुष्प, फल वा जल देता है उस मेरे भक्त का मैं भक्तिपूर्वक दिया हुआ ग्रहण करता हूँ' । इस प्रकार कहा हुआ भी वह सुदामा द्विज लज्जित हुआ लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण के लिये चिउडे की उस मुट्ठी को नहीं दिया और नीचे मुंह किये रहा । सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मदृष्टि से पहचाननेवाले श्रीकृष्ण उस सुदामा के आगमन के कारण को जानकर सोचा कि 'यह धन प्राप्ति की इच्छा से पहले मुझे नहीं मिला । पतिव्रता पत्नी के हित की इच्छा से मुझे मिला है ।

अस्य अमर्त्यदुर्लभाः सम्पदो दास्यामि'। इति विचिन्त्य तस्य सुदाम्नः वसनाच्चीरबद्धान् तण्डुलान् 'किमदमिति' कथयन् स्वयमेव जहार। तेनोक्तम्, 'प्रियसखे, नन्वेतदुपनीतं मे परमप्रीणनमस्ति'। श्रीकृष्णः यदा एकां तण्डूलमुष्टि जग्ध्वा द्वितीयां जग्धुमादेदे तावत् श्रीरुक्मिणी श्रीकृष्णस्य हस्तं गृहीत्वा। 'सर्वसम्पत्समृद्धये एतावदलम्' इत्युवाच।

अतः इसको अत्यन्त दुर्लभ संपत्ति दूंगा।' यह विचार करके उनने उस सुदामा के कपड़ों में से चिथड़े में बंधे चिउड़े को 'यह क्या है' यह कह कर स्वयं ही उससे छीन लिया। उनने कहा, प्रियमित्र, यह भेंट तो सत्य ही मुझे बहुत प्रिय है 'श्रीकृष्ण जब एक मुट्ठी चिउडा खाकर दूसरी खाने लगे, तब श्री रुक्मिणीजी ने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ कर सब प्रकार की सम्पत्ति और समृद्धि के लिए इतना ही बहुत है यह कहा।

श्रीसुदामा ब्राह्मणः श्रीकृष्णस्य मन्दिरे तस्यां रात्रौ उषित्वा विभिन्नानि व्यञ्जनानि भुक्त्वा मधुररसान् पीत्वा आत्मानं स्वर्गगतमेव मेने। द्वितीये दिने श्रीकृष्णात् धनं अलब्ध्वा स्वालयं जगाम। तेन स्वयमपि किमपि न याचितम्। अनेन द्विजवरेण स्वगृहे गच्छता मार्गे चिन्तितम् यत् क्वाहं दरिद्रो ब्राह्मणः क्व च श्रीनिकेतेनः श्रीकृष्णः किन्तु श्रीकृष्णेन ब्रह्मबन्धुरिति सम्बोध्य अहं बाहुभ्यां परिरम्भितः।

श्रीसुदाम ब्राह्मण श्रीकृष्ण के महल में उस रात्री को रहकर भिन्न भिन्न प्रकार के व्यञ्जन खाकर मधुर रसों को पीकर अपने आपको स्वर्ग में गए हुए की तरह समझा। दूसरे दिन श्रीकृष्ण द्वारा धन प्राप्त किए बिना ही (सुदामा) अपने घर को लोट पड़े। उनने स्वयं भी कुछ नहीं मांगा था। इस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने अपने घर जाते हुए मार्ग में सोचा कि 'कहां तो मैं दरिद्र ब्राह्मण और कहां लक्ष्मी जिनके कर में ही निवास करती है ऐसे श्रीकृष्ण, किन्तु श्रीकृष्ण ने ब्रह्मबन्धु यह सम्बोधन करते हुए मुझे अपने हाथों से आलिङ्गन दिया। इसके पश्चात् उनने अपने भाई की तरह अपने पलंग पर बिठाया। रुक्मिणी देवी ने अपने हाथ थके हुए मुझे पंखा झला। देवों के देव श्रीकृष्ण ने पांवों के प्रक्षालनादि द्वारा अत्यधिक शुश्रूषा करते हुए देवता की तरह मेरी पूजा की।' यह भी

तदनन्तरं तेन स्वभ्रातरमिव स्वपर्यङ्के निवासितः, रुक्मणीदेव्या स्वहस्तेन श्रान्तो वीजितः, देवदेवेन श्रीकृष्णेन पादसंवाहनादिभिः परमया सुश्रूषया देववत् पूजितः। इदमपि पुनः

तेन विचारितं यत् श्रीकृष्णेन एतद्विचिन्त्य एव मां धनं न दत्तं यत् 'अधनोऽयं धनं प्राप्य मदमत्तो न मां स्मरेदिति'।

एवं चिन्तयन् सः निजगृहान्तिकं प्राप्य सूर्यानलेन्दुसदृशैः प्रदीप्तनिकेतनैः सर्वतः व्याप्त भूप्रप्रदेशं दृष्ट्वा, कूजद्द्विजकुलाकुलै, विचित्रोपवनोद्यानैः समलंकृतं प्रदेशं विलोक्य विचारितं यत् 'किमिदम्, कस्य वा स्थानं, कथमिदमित्थमभूदिति'। एवं विचिन्तितं तं महाभागं नराः नार्यः भूयसा गीतवाद्येन अगृह्णन्। स्वपतिमागतं आकर्ण्य सा द्विजपत्नी तत्क्षणमेव गृहात् निश्चक्राम। पतिव्रता सा स्वपतिं दृष्ट्वा तस्य चरणकमलयोः अनमत्। दासीनां मध्ये भान्तीं पत्नीं वीक्ष्य स विस्मितोऽभूत्। तदनन्तरं स प्रीतः सन् स्वपत्न्यायुक्तः निजमन्दिरं प्रविष्टोऽभूत्। मणिस्तम्भशतोपेतं महेन्द्रभवनवत् तं भवनं विलोक्य परमविस्मितो बभूव। अन्तःप्रदेशेषु पयःफेननिभाः शय्याः सम्मुन्नताः पर्यङ्का. हेमदण्डानि चामरव्यजनानि हैमानि आसमानि तेषामुपरि

फिर उसने सोचा कि श्रीकृष्ण ने यह विचारते हुए ही मुझको धन नहीं दिया है कि 'दरिद्री यह धन प्राप्त करके मदमत्त हुवा मुझे स्मरण नहीं करेगा।'

इस प्रकार चिन्ता करते हुए वह (सुदामा) अपने घर के समीप आकर सूर्य, अग्नि, चन्द्र सदृश चमकते हुए घरों से व्याप्त उस भूप्रदेश को देखकर, शब्द कर रहे पक्षीगणों से व्याप्त विचित्र उपवनों और उद्यानों से शोभायमान प्रदेश को निहार कर सोचा कि, 'यह क्या है' यह किसका स्वान है ? यह ऐसा किस प्रकार हो गया। इस प्रकार चिन्ता करते हुए उस महोदय का मनुष्यों, स्त्रियों ने खूब गाने बजाने के साथ उनका स्वागत किया। अपने पति के आगमन की बात सुन कर वह ब्राह्मणपत्नी भी उसी समय घर से निकल पडी। पतिव्रता उसने अपने पति को देख कर उसके चरण कमलों में नमन किया। दासियों के मध्य में सुशोभित अपनी पत्नी को देखकर वह (सुदामा) विस्मित हो गया। इसके पश्चात् वह प्रसन्न होकर अपनी पत्नी के साथ अपने निवास (घर) में घुसा। सैंकड़ों मणियों के खम्भों से युक्त महेन्द्र के भवन की तरह उस भवन को देखकर अत्यन्त विस्मत हुआ। अन्दर के कमरों में दूध के झाग के सदृश शय्याओं को, उंचे पलङ्गों को, वे सोने के दण्डोंवाले चंवरों को सोने के आसनों को और उनके ऊपर कोमल चद्दरों

मृदूपस्तरणानि. मुक्तादामविलम्बीनि वितानानि. स्वच्छस्फटिककुड्येषु महा-मारकतेषु भाजमाना रत्नदीपान् विलोक्य स ब्राह्मणः सा समृद्धीं सर्वसम्पद् यदूत्तमस्य श्रीकृष्णस्य कृपाकटाक्षणैव समागता इति तर्कयामास । इति ।

को मोतियों की लड़ों वाले पड़दों को, स्वच्छ-स्पटिक की दीवारों पर लाल श्रेष्ठ मरकत मणियों पर शोभायमान रत्नों के दीपकों को देखकर वह ब्राह्मण उस सारी समृद्धि को और सभी सम्पदा को यादवकुल में उत्तम श्रीकृष्ण की कृपा से सब आई है यह समझा।' इति ।

सिंहस्य पुनरुज्जीवकाः चत्वारो भ्रातरः

कुसुमपुरनामकं नगरमस्ति। तत्र धरणीवराहनामको भूपतिरासीत्। तस्य विप्रबहुले राज्ये एको विष्णुस्वामिनामकः कोऽपि द्विजः प्रतिवसति स्म। तस्य स्वाहा नाम्नी भार्या आसीत्, तस्यां तस्य विष्णुस्वामिनामाख्यस्य द्विजस्य चत्वारः सुताः बभूवुः। ते च कालक्रमेण पितरि स्वर्गते सति ज्ञातिभिर्हृतसर्वस्वा परस्परं मन्त्रयाञ्चक्रुः—"इह अस्माकं गतिर्नास्ति, तदन्यत्र वयं गच्छामः' इति मन्त्रयित्वा यज्ञस्थलाभिधे ग्रामे मातामहाऽऽवासं जग्मुः। तत्र मातामहाभावात् मातुलैः सुसत्कृताः स्वाध्यायतत्परास्तस्थुः।

कालक्रमेण निर्धनाः ते चत्वारो भ्रातरः अन्नवस्त्रादिषु मातुलानामवज्ञाभाजनतां जग्मुः। ततः आत्मनीयजनैः हृतापमानेन दुःखितानां तेषां ज्येष्ठः एकान्ते स्वभ्रातॄनब्रवीत्,

सिंह को पुनः जिलानेवाले चार भाई

कुसुमपुर नाम का नगर है। वहां धरणीवराह नाम का राजा था। उसके ब्राह्मण बहुल राज्य में एक विष्णु स्वामी नामक कोई द्विज रहता था। उसके स्वाहा नाम की भार्या थी। उससे उस विष्णुस्वामो नामके द्विज के चार पुत्र हुए, और वे समय की गति के कारण पिता के स्वर्गवासी होने पर जाति के लोगों द्वारा सारी धन सम्पत्ति हरण कर लेने पर (उनने) परस्पर मन्त्रणा की, "यहां हमारी गति नहीं है, अन्यत्र ही हम जावें" यह मन्त्रणा करके (वे) 'यज्ञस्थल' इस नामके ग्राम में नाना के घर गए। वहां नाना के अभाव में मामा के द्वारा अच्छी प्रकार से सत्कार किए जाकर वे स्वाध्याय में तत्पर होकर रहने लगे।

काल की गति से निर्धन वे चारों भाई अन्न वस्त्रादि में मामाओं के द्वारा अवज्ञा अनुभव करने लगे। इसके पश्चात् आत्मीयजनों द्वारा अपमान से दुःखित उनके सबसे बड़े भाई ने एकान्त में अपने भाइयों को कहा।"

'भ्रातरः ! किं क्रियते ? सर्वे वयं आत्मनीयजनैः कृतमिदमपमानं पदे-पदे अवधारयत। अस्माभिरस्मिन् विषये किमपि कर्तुं न शक्यम्। अहं हि उद्वेगेन भ्राम्यन् वनं प्राप्तोऽद्य भूवि पतितमेकं मृतपुरुषमद्राक्षम्। तस्य शवस्य विषये चिन्तयता मया तां गतिं प्राप्तुं चिन्ततम्, विचारितं मया यत् 'अयं हि धन्यः यः दुःखभारं विमुच्य स्थितः" इति संचिन्त्य तत्कालं मरण-निश्चयं कृत्वा तरुशाखावलम्बिना पाशेन आत्मानमाबद्धयत्। चेतनाविहीनस्य मे स पाशः त्रुटितोऽभूत्। महीतले पतितोऽहं लब्धचेतनः यदा च त्रुटितपाशमपश्यम् तदा मया ज्ञातं यत् कथमहं आत्मघातकृत्यान्मुक्तोऽभूवम्। तत्रागतेनैकेन कृपालुना पुंसा पटमारुतैराश्वास्य लब्धसंज्ञं सोऽब्रवीत्—सखे ! कथय, विद्वानपि कं प्रति एवं खिद्यसे? सुकृती सुखमाप्नोति दुष्कृती दुष्कृतादेव दुःखमाप्नोति। सुकृतमाचर, आत्मघातसदृशाद्दुष्कृतात् किमर्थं नरकभोग-दुःखं वाञ्छसि ? इत्युक्त्वा मां समाश्वास्य स पुमान् स्वगन्तव्यं प्रति गतः। अहञ्च तादृशं नरकभोगकारकं मरणोद्यमं त्यक्त्वा इहाऽऽगतः। अनेन घटनाक्रमेण मया ज्ञातं यद्यदि विधिवामो-नास्ति चेत् मरणमपि न लभ्यते।

भाइयो ! क्या करें ? हम सब आत्मीयजनों द्वारा किए हुए इस अपमान को पद-पद पर धारण कर रहे हैं। हम सब इस विषय में कुछ भी करने को समर्थ नहीं है। मैं उद्वेग के द्वारा घुमाया गया आज जंगल में गया तो भूमि पर पड़े एक मृत पुरुष को देखा। उस शव के विषय में चिन्तन करते हुए मैंने उसकी गति को प्राप्त करने की चिन्ता की। मैंने विचार किया कि "यह ही धन्य है जो दुःख के भार को त्याग कर पड़ा है। यह सोच कर मैंने उसी समय मरने का निश्चय किया और वृक्ष की शाखा में लटके फंदे से अपने आपको बांध लिया। चतना शून्य होने पर मेरा वह पाश टूट गया। पृथ्वी पर गिरने पर मेरी जब चेतना जगी और जब टूटे फंदे को देखा तो मैंने जाना कि कैसे मैं आत्मघात के कृत्य से छूट गया। वहां आए हुए एक कृपालु व्यक्ति ने वस्त्रों की हवा से मुझे आराम देकर सचेतन हुए मुझ को कहा, " मित्र कहो ! विद्वान् होकर भी किस के प्रति खिन्न हुए हो ? अच्छे कर्म करने वाला सुख प्राप्त करता है और पापी दुष्कृत्य के कारण ही दुःख प्राप्त करता है। अच्छा कर्म करो, आत्मघात जैसे दुष्कृत्य से किस लिये नरक दिलानेवाले दुःख को चाहना करते हो" यह कहकर मुझ को आश्वासन देकर वह मनुष्य अपने गन्तव्य की ओर चला गया। इस घटना क्रम से मैंने जाना कि अगर विधिवाम नहीं है तो मृत्यु भी नहीं आती। अब तपश्चर्या करके तीर्थ

इदानीं तपसा तीर्थे स्वशरीरं दाहयामि येन जन्मान्तरेऽहम् निर्धनतादुःखभागी न स्याम् ।'

इत्युक्तवन्तं तं ज्येष्ठं कनिष्ठाः भ्रातरः प्राञ्जुवन्-"आर्य्य ! अर्थं विना पण्डितजनोऽपि दुःखेन बाध्यते । वयं पश्यामः यदर्थानां शरदकालिकमेघवच्चञ्चला गतिः । कथमपि समुपार्ज्य सोऽर्थः रक्ष्यमाणोऽपि यथा असन्मित्रं, वेश्या तथैव श्रीश्च कस्यापि जनस्य कदापि स्थिरा न भवन्ति । अतः उद्योगिना मनस्विना च कोऽपि गुणः उपार्जनीयः येन हठात् बद्धो अर्थहरिणः सुखपूर्वकं रक्षणीयः स्यात् । एवं स्वभ्रातृभिरुक्तो ज्येष्ठः किञ्चिद्धैर्यमवलम्ब्य उवाच,-कोऽसौ गुणः योऽर्जनीयः स्यात् ?' । ततः सर्वे विचिन्त्य परस्परं वदन्ति स्म यत् किमपि विज्ञानं वयं शिक्षामहे । एवं निश्चित्य ते सर्वे प्रत्यावर्त्य परस्परमेलनसङ्केतस्थानं निश्चित्य एकैकशः ते चत्वारो भ्रातरः चतुर्षु दिक्षु प्रययुः ।

अथ गच्छति काले सर्वे चत्वारो भ्रातरः सङ्केतस्थले आगत्य मिलिताः । "केन किं शिक्षितम्" ? इति प्रत्येकं अन्योन्यमपृच्छत् । एषामेकोऽब्रवीत्

स्थान पर अपने शरीर को जलाऊंगा जिससे जन्मान्तर में भी निर्धनता का दुःख भागी न होऊं ।"

इस प्रकार कहते हुए उस बड़े भाई को छोटे भाई बोले, "आर्य्य ! अर्थ (धन) के बिना पण्डित लोग भी दुःखी होते हैं । हम देखते हैं कि अर्थ को शरद्काल के मेघ की सी चंचल गति होती है । किसी तरह से यह धन उपार्जित किया हुआ भी और उसकी रक्षा किए जाने पर भी कुमित्र, वेश्या और लक्ष्मी की तरह किसी भी व्यक्ति के पास यह स्थिर होकर नहीं रहता । इसलिये उद्योगी और मनस्वी लोगों को कोई भी गुण सीखना चाहिये । जिससे हटात् पकडा हुआ अर्थरूपी हरिण सुखपूर्वक रक्षणीय हो सके ।" इस प्रकार अपने भाइयों द्वारा कहा गया वह जेष्ठ भ्राता किञ्चित् धैर्य का अवलम्बन कर के बोला, "वह कोनसा गुण है जिसको सीखा जाय ?" इस पर सबने विचार करके एक-दूसरे से कहा, 'कोई विज्ञान हम सीखें" । इस प्रकार विचार करके वे सब लौटकर आने पर परस्पर मिलने का संकेत स्थान निश्चित करके एक एक करके चारों भाई चारों दिशाओं में चले गए ।

इसके पश्चात् कुछ समय बीत जाने पर सभी चारों भाई सङ्केत किए स्थान पर आकर मिले । "किसने क्या सीखा" ? यह प्रत्येक एकदूसरे को पूछने लगा । इनमें एक बोला,

"मया ईहशं विज्ञानं शिक्षितं येन यस्य कस्यचिदपि प्राणिनः अस्थिपञ्चरं प्राप्यं तस्मिन् तदुचितानि मांसानि उत्पादयामि ।" एतदाकर्ण्य तेषु द्वितीयोऽवदत्, 'मया ईदृशं विज्ञानमधिगतम्, येन यस्मिन् प्राणिनि उत्पन्नानि त्वङ्मांसलोमानि सन्ति तस्यावयवेषु चक्षुरादीनीन्द्रियाणि स्रष्टुं जाने । चतुर्थोऽब्रवीत्, "अहं उत्पन्नावयवं अस्थिपञ्जरं प्राणैर्युक्तं कर्तुं शक्नोमि ।"

"मैंने ऐसा विज्ञान सीखा है जिससे जिस किसी भी प्राणी के अस्थिपञ्जर के प्राप्त होने पर उस पर उसके योग्य मांस उत्पन्न कर देता हूँ।" यह सुनकर दूसरा बोला, "मैंने वैसा विज्ञान सीखा है जिससे मास उत्पन्न हुए अस्थिपञ्जर मै उस प्राणि में होने वाला चमड़ा और उसके बाल पैदा कर सकता हूँ।" तिसरा बोला, "मैंने ऐसा विज्ञान सीखा है जिससे, जिस प्राणि में मास, चर्म और केश उत्पन्न होगए हों ऐसे उसके अवयवों में नेत्र आदि इन्द्रियों की सृष्टि करना जानता हूं।" चोथा बोला, "मैं अवयववाले अस्थिपञ्जर को प्राणों से युक्त कर सकता हूँ।"

एवं ते परस्तरमुक्त्वा विज्ञानपरीक्षणाय चत्वारोऽपि अस्थिपञ्चरमन्वेषयितुं वनमध्ये ययुः । विधिवशाच्च ते तत्र सिंहस्य अस्थिपञ्जरं प्रापुः । प्रथमस्ततस्समुचितैर्मांसैस्तदस्थिपञ्जरमयोजयत् । द्वितीस्तस्य त्वचो लोमानि च उदपादयत् । तृतीयोऽपि प्राणशून्यं सिंहशरीरं समग्रैरिन्द्रियैर्युक्तमकरोत् । चतुर्थस्तु यदा तस्य चेतनाविहीनस्य सिंहशरीरस्य मध्ये जीवितमदात्, तदा सञ्जातजटाभारोऽतिभयङ्करः दंष्ट्राकरालदहनः तीक्ष्णनखाङ्कुशः मृगेन्द्रः सिंहः सचेतनोऽभूत्, स च सिंहः क्षुधार्तः स्वसम्मुखे मनुष्यान् विलोक्य स्वोत्पाद

इस प्रकार परस्पर बातचील कर के वे सब चारों विज्ञान की परीक्षा के लिये अस्थिपञ्जर को खोजने को जंगल में गए। दैवयोग से उनने वहां सिंह के अस्थिपञ्जर को देखा। पहले व्यक्ति ने उसके योग्य मांस से युक्त उस अस्थिपञ्जर को कर दिया। दूसरे ने उसके चर्म और बाल उत्पन्न कर दिए। तिसरेने भी प्राणशून्य सिंह के शरीर को सम्पूर्ण इन्द्रियों से युक्त कर दिया। चोथे ने तो जब उस चेतना विहीन सिंह के शरीर में जीवन दिया तो उत्पन्न हुए है जटाभार जिसके एसा अत्यन्त भयंकर लम्बे-लम्बे दांतो वाले मुखवाला, तथा लम्बे नखरूपी अंकुशवाला मृगेन्द्र सिंह चेतनायुक्त होगया, और वह भूखा सिंह अपने सम्मुख मनुष्यों को देख कर स्वयं को उत्पन्न

कान् तान् सर्वानपि चतुरोभ्रातॄ नुत्थायाक्रम्यचाभक्षयत्, तत्क्षरणमेवारण्यमध्ये प्रविष्टो बभूव ।

एवं ते द्विजपुत्राः सिंहनिर्माणदोषात् सर्वं एव विनाशं गताः । दुष्टं हिंस्रं जन्तुमुत्थाप्य कस्य जनस्य सुखं भवति--इति ।

करनेवाले उन सभी चारों भाइयों को खड़ा होकर तथा आक्रमण करके खागया और उसी क्षण जंगल में घुस गया ।

इस प्रकार वे ब्राह्मणपुत्र सिंह के निर्माण के दोष के कारण सभी विनष्ट हो गए । दुष्ट हिंस्रप्राणि को खड़ा करने पर किस मनुष्य को सुख प्राप्त होता है ? इति ।

शुकशारिकोपाख्यानम्

अस्ति पाटलीपुत्रं नाम विश्वविख्यातं नगरम् । पुरा तत्र विक्रमकेसरीनामको नृपतिरासीत् । स राजा गुणवान् धनवांश्चासीत् । तस्य विदग्धचूडामणिर्नामा शिल्पशास्त्रज्ञो सर्वशास्त्रविच्च अभिशापेनाधः पतितः एकः शुकः आसीत् । तस्य नृपस्य पुत्रः शशी नाम शुकोपदेशेन मगधदेशनृपतिकन्यां चन्द्रप्रभां उपयेमे । तस्या अपि राजपुत्र्या शुकसदृशी ज्ञानविज्ञानशालिनी सोमिका नाम शारिकाऽसीत् । अथ तौ शारिकाशुकौ एकपञ्जरस्थौ राजप्रासादे आस्ताम् ।

एकदा साभिलाषः स शुकः तां शारिकामब्रवीत्, "सुन्दरि ! एकशय्याऽऽहारविहारेषु मां भज" । शारिकाऽब्रवीत्, नाहं पुरुषसंसर्गं कर्तुमिच्छामि, यतः पुरुषाः दुष्टाः कृतघ्नाश्च" इति । ततः "न पुमाँसो दुष्टाः, स्त्रिय एव दुष्टाः नृशंसहृदयाश्च" इति शारिकया कथिते सति तयोर्मध्ये विवादो बभूव ।

शुकशारिका की कथा

पाटलीपुत्र नामका विश्व विख्यात नगर है । पहले वहां विक्रमकेसरी नामका राजा था । वह राजा गुणवान् धनवान् भी था । उसके यहां विदग्धचूडामणि नाम का शिल्पशास्त्र का जानने वाला और सभी शास्त्रों का ज्ञाता अभिशाप से पतित एक शुक (तोता) था । उस राजा के शशी नामवाले पुत्रने शुक के उपदेश से मगधदेश के राजा की कन्या चन्द्रप्रभा से विवाह करलिया । उस राजपुत्री के शुक के समान ज्ञान विज्ञान शालिनी सोमिका नामी सारिका (मैना) थी । इसके बाद वे दोनों शुक और शारिका एक पिंजरे में राजमहल में रहते थे ।

एक दिन उत्सुक वह शुक उस सारिका को बोला, "सुन्दरी ! मेरे साथ एक शय्या एक आसन एक आहार विहारवाली हो ।" शारिका बोली, "मैं पुरुषो का संसग करना नहीं चाहती, क्योंकि पुरुष दुष्ट और कृतघ्न होते हैं । इस पर "नहीं पुरुष दुष्ट नहीं स्त्रियां ही दुष्टा और नृशंसहृदया होती हैं " ऐसा सारिका के कहने पर उन दोनों के बीच में विवाद होगया । इसके पश्चात् वे दोनों पक्षी

ततस्तौ पक्षिणौ आजीवनं परिचारकत्व-पणं कृत्वा परस्पर विवादस्य समाधानाय राजपुत्रं प्रति जग्मतुः ।

आजीवन सेवक सेविका रहने का प्रण करके परस्पर विवाद के समाधान के लिये राजपुत्र के पास गए ।

सभास्थः राजपुत्रः विवादविषयं श्रुत्वा "कथं पुरुषाः कृतघ्नाः, ब्रूहि तत् त्वम्" इति शारिकामपृच्छत् । ततः सा "शृणोतु राजपुत्रः" इति समाख्याय स्वपक्षसमर्थनाय पुंदोषाख्यायिनीं कथां कथयितुमारेभे ।

सभा में बैठा राजकुमार विवाद के विषय को सुनकर "कैसे पुरुष कृतघ्न होते हैं," यह तुम बताओ" इस प्रकार शारिका को पूछा । तो उसने कहा—"सुनो राजपुत्र" यह कह कर अपने पक्ष का समर्थन करने के लिये पुरुष का दोष बताने वाली कथा कहना प्रारम्भ किया ।

"कामन्दकी नाम विख्याता नगरी अस्ति । तस्यां अर्थदत्तो नाम महाधनी वणिक् प्रतिवसति स्म । कालेन तस्य धनदत्तो नाम तनयः समजायत । तस्य पितरि स्वर्गते स युवा द्यूतादिसङ्गेन अत्यधिकमुच्छृङ्खलोऽभूत् । धूर्ताः वञ्चकाश्च तेन सह सङ्गताः सन्तः तं सर्वथा सन्मार्गात्समपातयन् । दुर्व्यसनविषवृक्षस्य दुर्जनसङ्गतिरेव मूलं भवति । अत्यल्पसमयेन व्यसनाऽऽसक्ततया क्षीणसर्वस्वः, दारिद्र्येण च सन्त्रस्तः सः स्वदेशं त्यक्त्वा धनप्राप्त्यर्थं देशान्तरेषु जगाम । इतस्ततः गच्छन् सः चन्दनपुरनामनगरे प्रविश्य भोजनार्थी च कस्यापि वणिजः गृहे विवेश । स च वणिक् धनदत्तं कुमारं दृष्ट्वा, कुलं च पृष्ट्वा, कुलीनं च ज्ञात्वा सत्कृत्य च

कामन्दकी नामकी विख्यात नगरी है । उसमें अर्थदत्त नामका महाधनिक वणिक् रहता था । समय पाकर उसके धनदत्त नामका पुत्र हुवा । उसके पिता के स्वर्गवासी होने पर वह युवा द्यूतक्रीडा आदि के सङ्ग से अत्यधिक उच्छृङ्खल होगया । धूर्त और ठगनेवाले लोगों ने उसके साथ होकर उसको सर्वथा सत्मार्ग से गिरा दिया । दुर्व्यसन के विषवृक्ष की जड दुर्जन सङ्गति ही है । थोड़े ही समय में व्यसनों में आसक्ति होने पर वह सब धन गंवा कर और दारिद्र्य से संत्रस्त होकर अपने देश को छोडकर धन प्राप्ति के लिये देशान्तरों में चला गया । इधर उधर जाते हुए चन्दनपुर नामके नगर में घुस कर भोजनार्थी वह किसी वणिक् के घर में घुसा । और वह वणिक् धनदत्त कुमार को देखकर, कुल पूछकर और कुलीन जान कर सत्कार करके दैववश यह

दैववशादयं प्राप्त इति मत्वा तस्मै सधनां रत्नावतीं स्वसुतां अददात् । ततः स धनदत्तः कृतविवाहः तस्मिन्नेव श्वशुरगृहे तस्थौ ।

प्राप्त हुआ है यह मानकर उसको बहुतसा धन और अपनी पुत्री रत्न.वती को भी दे दिया । इसके पश्चात् वह धनदत्त विवाह होने पर श्वशुर के घर में ही रहने लगा ।

गच्छत्सु च दिनेषु सुखेन विस्मृत-दुर्गतिः पुनर्व्यसनोत्सुकः स्वदेशं गन्तु-कामोऽभवत् । ततः सः शठः कथमपि-श्वशुरं विनयप्रणिपातादिना आराध्य-तामलङ्कृतां भार्यां रत्नावतीं एकया बृद्धया स्त्रिया सहितां गृहीत्वा स्वदेशाय जगाम । शनैः शनैः एकामटवीं प्राप्य 'अत्र तस्करभयं वर्तते' इत्युक्त्वा तस्याः भार्यायाः सर्वाणि अलङ्करणानि हस्त-गतानि चकार । पश्यतु युवराजः द्यूता-वेशादिव्यसनिनां कृतघ्नानां हृदयं खड्गवत्कर्कशम् भवति । स च पापात्मा अर्थार्थं गुणवतीमपि स्वभार्यां हन्तुं वृद्धया सहितां एकस्मिन् भूगर्ते न्यक्षि-पत् । तत्क्षणमेव च स द्रुतगत्या स्वदेशं प्रति जगाम । सा वृद्धा तु तस्मिन्नेव भूगर्ते पञ्चत्वं गता । सा तु रत्नावती कथञ्चित् तत्र तृणगुल्मादिकमालम्ब्य रुदंती स्वायुषोऽवशेषत्वात् समुत्थिता विक्षताङ्गी पदे पदे मार्गं पृष्ट्वा यथागतेनैव पथा अतिकष्टेन स्वपितुः सदनम् आगमत् ।

समय बीतने पर सुख के कारण दुर्गति को विस्मरण करके फिर से व्यसनोत्सुक होकर वह अपने देश को जाने की सोचने लगा । इसके पश्चात् वह शठ श्वशुर को किसी तरह विनय प्रणामादि द्वारा राजी करके उस अलङ्कार पहनी हुई पत्नी रत्नावती को एक वृद्धा को साथ लेकर स्वदेश चला । धीरे धीरे एक जंगल में पहुँच कर, "यहां चोरों का भय है ।"

यह कह कर उसने अपनी स्त्री के सभी अलङ्कार (गहने) हस्तगत कर लिये । देखो युवराज ! द्यूतावेशादि के व्यसनी कृतघ्नों का हृदय खड्ग की तरह कर्कश होता है । वह पापात्मा धन प्राप्ति के लिये गुणवती भी अपनी भार्या को मारने के लिये उस वृद्धा के साथ एक गहरे खड्डे में फेंक दिया । उसी समय वह द्रुतगति से अपने देश की ओर चला गया । वह वृद्धा तो उस खड्डे में पडकर मरगई । वह रत्नावती किसी प्रकार वहां तृणगुल्म आदि का अवलम्बन करके रोती हुई अपनी आयुष्य के अवशेष होने से बाहर आकर क्षत विक्षत अङ्गवाली पद पद पर मार्ग पूछ कर जिस मार्ग से आई थी उसी मार्ग से अत्यन्त कष्ट के साथ अपने पिता के घर जा पहुँची ।

आगतां रत्नावतीं विलोक्य "कथमकस्मात् त्वीदृशी प्रत्यागता ?" इति ससम्भ्रमं मात्रा पित्रा च पृष्ट्वा सा च साध्वी एवमभाषत, 'पथि तस्करैः अहृतसर्वधनाः वयम्, तैः नीतश्च बलात् स मे पतिः, वृद्धा च सा भूगर्ते निपत्य मृता, अहं च सुदैवाज्जीवामि । एवंभुक्तवती मात्रा पित्रा च शोकं कुर्वंतीसमाश्वासिता सा पतिव्रता रत्नावती तस्थौ ।

आई हुई रत्नावती को देखकर "कैसे अकस्मात् तुम ऐसे लौट आई" यह सहसा माता-पिता द्वारा पूछी गई वह साध्वी रत्नावती इस प्रकार वोली । "मार्ग में चोरों के द्वारा सम्पूर्ण धन जिनका हरण कर लिया गया ऐसे हम होगए। वे बलपूर्वक मेरे पति को ले गए । और वह वृद्धा खड्डु में पड़कर मरगई, और मैं सुदैव से जीवित हूँ । इस प्रकार माता पिता द्वारा कही जाती हुई, शोक करती हुई आश्वासन प्राप्त करती हुई रत्नाबती वहां ठहरी ।

अथाचिरमेव धनदत्तः द्यूतेन नाशितसर्वधनः पुनरचिन्तत्—"गच्छामि, पुनः श्वशुरगृहाद्धमानयामि । तत्र गत्वा तं श्वशुरं 'मे गृहे स्थिता तव पुत्री रत्नावती कुशलिनी इति कथयिष्यामि ।" इति स मनसि संकल्प्य श्वशुरगृहं पुनरागतोऽभूत् । आगतं च तं दूरात् सा पतिपरायंणा भार्या रत्नावती अपश्यत् । दृष्टै्व प्रधाव्य सां तस्य दुष्टस्य पादयोर्निपत्य तत्समक्षं सर्वं पितृभ्यां सम्मुखे यदसत्यं निवेदितमासीत्तत्सर्वं अकथयत् । दुष्टेऽपि पत्यौ पतिव्रतानां मानसं तद्विपरीतं न भवति ।

अब शीघ्र ही धनदत्त द्यूत द्वारा सारा धन नष्ट हो जाने पर फिर चिन्ता करने लगा । "जाता हूँ, फिर श्वशुर के घर से धन लाता हूँ । वहां जाकर उस श्वशुर को "मेरे घर पर तुम्हारी पुत्री रत्नावती कुशलपूर्वक है कहूँगा" यह मन में विचार करके श्वशुर के घर में फिर पहुँचा । आए हुए उसको दूर से ही देख कर उस पतिपरायणा स्त्री रत्नावती ने देखा । देखते ही दौडकर वह उस दुष्ट के पावों में गिरकर उसके सामने सब माता–पिता के समक्ष कहा जो असत्य कथन था उसको कहा । दुष्ट पति के होने पर भी पतिव्रताओं का मन उसके विपरीत नहीं होता ।

ततः स दुरात्मा निर्भयः श्वशुरस्य गृहे प्रविश्य तं श्वशुरं पादयोः प्रणिपत्य अतिष्ठत् । स च तं जामातरं दृष्ट्वा

इसके पश्चात् वह दुरात्मा निर्भय श्वशुर के घर में प्रवेश करके उस श्वशुर के पावों में गिर गया । और वह उस जामाता को देख

अभ्यनन्दत् । सौभाग्येनाऽयं मे जामाता चौरैर्मुक्त इति बन्धुभिः सह महोत्सवमकरोत् । ततः स धनदत्तः सुखेन श्वशुरसम्बन्धिनीं समृद्धि भुञ्जानः तया रत्नावत्या सह तत्र अस्थात् ।

कर अभिनन्दन करने लगा । सौभाग्य से यह मेरा जामाता चोरों से मुक्त हुआ है इस कारण बन्धुओं के साथ उसने महोत्सव किया । इसके पश्चात् वह धनदत्त सुख से श्वशुर सम्बन्धिनी समृद्धि को भोगता हुआ तथा रत्नावती के साथ वहां रहने लगा ।

एकदा सः महापापः रात्रौ यच्चकार तत् अकथनीयमपि कथाभङ्गभयान्मया कथ्यते. शृणु राजपुत्र ! असौ पापमतिः विश्वस्तां सुप्तां तां रत्नवतीं निशि हत्वा तदाभरणसञ्चयं अपहृत्य अदृष्टः स्वदेशं जगाम । ईदृशाः पुरुषाः पापाचाराः कृतघ्नाः भवन्ति " इति शारिकया कथिते सति सः राजपुत्रः हसन् "त्वमिदानीं वद" इति शुकमभाषत । ततः स शुकोऽब्रवीत्—"देव ! स्त्रियः अनुचितकर्मकारिण्यः दुश्चरिताः पापिन्यश्च भवन्ति । तथाचात्र कथामेकां वर्णयामि शृणोतु कमारः ।

एक दिन उस महापापी ने रात्री में जो कुछ वे किया वह अकथनीय है तो भी कथाभंग के भय से मैं कहती हूं । सुनो राजपुत्र ! यह पापमति विश्वस्त सोती हुई उस रत्नावती को रात्री में मारकर उसके आभरणों को लेकर छिपे छिपे अपने देश को चला गगा । ऐसे पुरुष पापाचारी और कृतघ्न होते हैं । इस प्रकार शारिका द्वारा कहे जाने पर वह राजपुत्र हँसकर "तुम अब कहो ? यह शुक को बोला । इसके पश्चात् वह शुक बोला, "देव ! स्त्रियां अनुचित कर्म करनेवाली दुश्चरित्रवाली पापिनी होती हैं । अब मैं यहां एक कथा बताता हूं हे कुमार ! सुनो ।

× × × ×

× × × ×

अस्ति हर्षवती नाम नगरी । तत्रासीद्धर्मदत्तो बहुकोटीश्वरो वणिजामग्रणीः तस्य वसुदत्ता नाम्नी रूपेण असामान्या कन्याऽभवत् । सा कन्या तेन धर्मदत्तेन ताम्रलिप्तनिवासिने समानधनयौवनकुलशालिने समुद्रदत्ताख्याय वणिक्पुत्राय प्रदत्ता ।

हर्षवती नाम की नगरी है । वहां धर्मदत्त नामका करोडपति व्यापारियों में अग्रणी था । उसके वसुदत्ता नामकी सुन्दरता में असामान्य कन्या थी । वह कन्या उस धर्मदत्त ने ताम्रलिप्त निवासी धन, यौवन और कुल में समान ऐसे समुद्रदत्त नामके बनिये के लडके को दी ।

कदाचित् सा पत्यौ स्वदेशस्थिते सति स्वपितृगृहे स्थिता दूरात् कमपि कान्तविग्रहं युवानं ददर्श। तं दृष्ट्वा सा चपला स्मरमोहिता सखीद्वारा वार्ता प्रदाय तं गुप्तनायाकं अभजत्। प्रतिरात्रं तेन सह मिलिता सा तदेकासक्तमानसा संजाता।

किसी दिन उसने, पति के अपने देश में होने पर अपने पिता के घर पर स्थित, दूर से ही किसी सुन्दर शरीर वाले युवक को देखा। उसको देख कर वह चपला, कामदेव द्वारा मोहित की गई सहेली द्वारा अपनी वार्ता भिजवा कर उस गुप्तनायक की सहचरी हो गई। प्रत्येक रात्री में वह उससे मिलती थी और वह उसी में आसक्त होगई।

अथैकदा स तस्याः पतिः स्वदेशात् आगतः श्वश्रूश्वशुरयोः परां प्रीतिमवर्धयत्। जामातुरागमनजनितानन्दानुष्ठानेन व्यतीते दिवसे रात्रौ सा वसुदत्ता मात्रा अलङ्कृता शय्यास्थायिनं पतिं प्रति प्रेषिता। तत्र सा अन्यमानसा कपटनिद्रामकरोत्। तस्याः स पतिरपि अध्वश्रान्तः पानमत्तश्च निद्राधीनो बभूव। ततः तस्मिन् प्रासादे सर्वत्र भुक्तपीतजने क्रमेण सुप्ते सति कश्चित् चौरः सन्धिम (छिद्र) भित्वा तस्मिन् वासगृहे प्राविशत् यस्मिन् चास्ताम् धर्मदत्तो वसुदत्ता च।

अब एकवार वह उसका पति अपने देश से आया तो सास स्वसुर को बहुत प्रसन्नता हुई। जामाता के आने से उत्पन्न हुए आनन्द के मनाने में दिन व्यतीत होजाने पर रात्री में वह वसुदत्ता माता के द्वारा अलङ्कार पहिनाई गई शयनागार में सोये हुए पति के पास भेजी गई। वहां पर वह अन्य में आसक्त होने के कारण निद्रा आने का बहाना करने लगी। उसका वह पति भी मार्ग में थका हुआ और मादकद्रव्य के पीने से मत्त होने के कारण नींद के आधीन होगया। इसके पश्चात् उस महल में सब जगह भोजन तथा पान किए हुए जनों के क्रम से सोजाने पर कोई चौर सन्धि (छेद) तोड कर उस निवासगृह में घुस गया जिसमें धर्मदत्त और वसुदत्ता थे।

सा च वणिक्पुत्री वसुदत्ता तत्क्षणे तं चौरमपश्यन्ती समुत्थाय तेन युवकेन विज्ञापितस्थले एकाकिनी निरगात्। तदालोक्य स चौरः विछिन्नाभिलाषो व्यचिन्तयत्, येषामाभरणा-

और वह वणिक् की लड़की वसुदत्ता उसी समय चौर को न देखती हुई उठकर उस युवक द्वारा बताए स्थल पर अकेली चली गई। यह देख कर वह चौर अभिलाषा में विघ्न पड़ा देख कर सोचने लगा, जिन

नामर्थे अहं प्रविष्टो तैरेवाभरणैर्वेष्टिता एषा क्व गच्छतीति द्रष्टव्यम्" इति पर्यालोच्य स चोरः तां वणिक्सुतां अनुगतोऽभूत्।

आभूषणों के लिये मैं (घरमें) प्रविष्ट हुआ था उनही आभूषणों से अलङ्कृत यह कहां जाती है यह देखना चाहिये। यह सोच कर वह चौर उस वणिक् की पुत्री के पीछे चल दिया।

साऽपि पुष्पचन्दनताम्बूलादिसम्भारहस्तया सख्या संयुता बाह्यमुद्यानं गत्वा अनतिदूरगं स्थलं प्रविवेश। तत्र च संकेतस्थानमागतम् नगररक्षिभिश्चौरबुद्धया पाशं कंठे दत्वा लम्बितं गतप्राणं तं युवकं ददर्श। सा तु तदवलोक्य विह्वला "हा! हतास्मि" इति वादिनी कारुणिकं विलपन्ती भूमौ पपात।

वह भी पुष्प-चन्दन ताम्बूल आदि का बीड़ा हाथ में लिये हुए सखी के साथ बाहर के बगीचे में जाकर निकट के स्थल में घुसी। वह संकेत स्थान पर आए नगररक्षकों ने चोर समझ कर गले में फन्दा लगा कर लटकाए हुए मृत उस युवक को देखा। उसने तो उसको देखकर व्याकुल होते हुए, "हाय! मैं मर गई" यह कहती हुई कारुणिक विलाप करती हुई भूमि पर गिर पड़ी।

अथ तं युवकं वृक्षादवतार्य उपवेश्य च गतप्राणमपि अङ्गरागैरलङ्कारैः पुष्पैश्चालञ्चकार। यावच्च सा तस्यालिङ्गनार्थं तत्सम्मुखमागता तावत् स निर्जीवः युवकः वेतालानुप्रविष्टः सन् दन्तैस्तस्या नासिकां चिच्छेद। तेन सा विह्वला तस्मात्प्रदेशात् व्यथिताऽपसृताऽपि, अहो! किं जीवत्यसौ? इति पुनरागत्य यावत् पश्यति स्म, तावत् तं वीतवेतालं विश्चेष्टं पतितं मृतं च निश्चित्य सा भीता रुदती शनैः गृहं प्रत्याजगाम।

इसके पश्चात् उस युवक को वृक्ष से उतारकर बिठाकर मरे हुए को भी अङ्गराग, अलङ्कारों से तथा पुष्पों से विभूषित कर दिया। जैसे ही वह उससे आलिङ्गन हेतु उसके सामने आई वैसे ही उस निर्जीव युवकने वैताल उसमें घुसा हुआ था इस कारण दांतों से उसकी नांक को काट लिया। इससे विह्वल वह उस स्थान से व्यथित होकर गई हुई भी, अहो! क्या यह जीवित है? यह सोचकर फिर से आकर जैसे ही देखा तो उस वैताल के निकल जाने पर गिरे हुए और निश्चित मरे हुए उसको देखकर वह डरी हुई रोती हुई धीरे से घर में लौट आई।

स च चौरः प्रच्छन्नः प्रच्छन्नस्थाने स्थितः सर्वमेतत् विलोक्य अचिन्तयत्, "अहो, किमिदं पापिन्या अनया कृतम् ? हा ! स्त्रीणामभिप्रायः कथमीदृक् भीषणः ? तदिदानीमपि एषा किं न कुर्यात् ?" इति विचिन्त्य कौतुकात् स चौरः पुनरपि दूरात् तामनुससार ।

सा च पापिनी गृहं प्रविश्य उच्चैः प्ररुदती एवमब्रवीत्, 'रक्षत माम् एतेन दुष्टेन भर्तृरूपेण शत्रुणा मम निरपराधाया नासिका छिन्ना" इति । ततः तस्या रोदनमाकर्ण्य सहसा तत्परिजनाः सर्वे उदतिष्ठत्, पतिरपि विगतनिद्रो बभूव । अथ तत्पिता तत्रागत्य तां छिन्ननासिकां दृष्ट्वा-क्रुद्धस्तं जामातारं बन्धयामास । स च किंकर्तव्य-विमूढस्तदानीं बध्यमानोऽपि मूकवदिष्ठत्, न किमपि प्राब्रवीत् । स च चौरोऽपि सर्ववृत्तान्तज्ञो तस्मात् भवनात् अपसृतोऽभूत् ।

प्रभातवेलायां स च वणिक्सुतः तेन श्वशुरेण राज्याधिकारिणः समीपं नीतः । सा च छिन्ननासा वसुदत्ता तत्राऽऽगता । स न्यायाधीशः सर्वं वृत्तान्तमुपश्रुत्य अयं स्वदारद्रोहीति निर्णीय तस्य वणिक्सुतस्य समुद्रदत्तस्य वधं समादिशत् ।

और वह चौर गुप्तस्थान पर अप्रगट रहता हुवा यह सब देखकर—सोचने लगा, "वाह ! इस पापिनी ने यह क्या किया ? हाय ! स्त्रियों का अभिप्राय क्या इतना भीषण होता है ? अब इसके पश्चात् भी यह क्या नहीं कर सकती ? यह सोचकर कौतुहल से वह चौर फिर से दूर ही से उसका अनुसरण करने लगा ।

और वह पापिनी घर में घुस कर उच्च स्वर में रोती हुई इस प्रकार बोली, इस दुष्ट पतिरूप शत्रु से मुझे बचाओ ! मुझ निरपराध की नाक इसने काटली ।' इसके पश्चात् उसके रोदन को सुन कर अचानक उसके परिजन सारे उठ गए, पति भी जग गया । तत् पश्चात् उसका पिता वहां आकर उस कटी नांकवाली को देख कर क्रोधित हुवा और उस जामाता को (उसने) बांध दिया । उस समय वह तो किंकर्तव्यविमूढ हुवा बंधा हुवा भी चुपचाप ही रहा, कुछ भी नहीं बोला । और सारा वृत्तान्त जानने वाला वह चौर भी उस स्थान से चला गया ।

प्रभात वेला में वह वणिक्पुत्र (जामाता) उस श्वसुर के साथ राज्याधिकारी के समीप लेजाया गया । और वह नकटी वसुदत्ता वहां आई । न्यायाधीश ने सारावृत्तान्त सुनकर यह अपनी पत्नी का द्रोही है यह निर्णय करके उस वणिक्सुत समुद्रदत्त के वध का निर्णय दे दिया ।

ततस्तस्मिन् निरपराधे वणिक्-सुते सडिण्डिमं बध्यभूमिं नीयमाने स चौरः समागत्य राज्यपुरुषानभाषत अकारणमयं कथं बध्यभूमौ नीयते ? सत्यवृत्तान्तमहं सर्वं जानामि, मां न्यायाधीशान्तिकं नयत, अहं सर्वं तत्र वदिष्यामि" । इत्युक्तवन्तं ते सर्वे राजपुरुषाः न्यायाधीशन्तिकमनयन् । स च चौरः प्रारम्भात् सर्वं रात्रिवृत्तान्तं न्यायाधीशसमक्षं न्यवेदयत्, अब्रवीच्च, देव ! न चेत् मद्वचसि तव विश्वासः तत् सा नासा तस्य शवस्य मुखे अधुनैव निरीक्ष्यताम्" । श्रुत्वा वीक्षितुं भृत्यान् प्रेष्य, तेषां मुखात्सत्यं विज्ञाय सः न्यायाधीशः तं वणिक्-पुत्रं वधदण्डाद्विमुच्य तां दुष्टां वसुदत्तां कर्णविहीनामपि कृत्वा प्रदेशाद्बहिः निःसारसयत् । तत्पितरं वणिजमपि च अर्थदण्डेन दण्डयत्, तुष्टश्च न्यायाधीशः तं चौरं पुराध्यक्षमकरोत् ।

"राजपुत्र ! इत्थं निसर्गविषमाः कुटिलस्वभावाः स्त्रियः भवन्ति" इति वदन्नेव शुकः इन्द्रशापक्षयात् चित्ररथोनाम गन्धर्वराजो भूत्वा दिवमगात् । सा च सारिका तत्क्षणमेव विमुक्तशापा सुराङ्गना तिलोत्तमा भूत्वा आकाशमुदगच्छत् । तयोस्तु तस्यां "सभायां विवादो न निर्णीत" । इति ।

इसके पश्चात् उस निरपराध वणिक् पुत्र के डिंडिमघोष के साथ बध्यभूमि को लेजाये जाने पर वह चौर आकर उन राजपुरुषों को बोला, "अकारण इसे बध्यभूमि (फांसी के स्थान पर) क्यों लेजा रहे हो ? सारा सच्चा वृत्तान्त मैं जानता हूँ, मुझ को न्यायधीश के समीप ले चलो, मैं सब (वृत्तान्त) वहां बताऊंगा ।" ऐसा कहनेवाले उसको वे सब राजपुरुष न्यायाधीश के सम्मुख लेगये और वह चौर प्रारम्भ से लेकर समस्त रात्री के वृत्तान्त को न्यायाधीश के समक्ष निवेदन करके बोला, देव ! यदि मेरे कथन में विश्वास न हो तो वह नांक उस शव के मुख में अभी भी देखलें ।' यह सुनकर देखने को कर्मचारियों को भेजकर उनके मुख से सत्य ज्ञान प्राप्त करके उस न्यायाधीश ने उस वणिक्पुत्र को मृत्युदण्ड से मुक्त करके उस दुष्टा वसुदत्ता को कान कटवाकर प्रदेश के बाहर निर्वासित कर दिया । उसके पिता वणिक् को भी अर्थदण्ड से दण्डित किया । तुष्ट उस न्यायाधीशने उस चोर को नगराध्यक्ष कर दिया ।

"राजपुत्र ! इस प्रकार प्रकृति से टेढी कुटिल स्वभाववाली स्त्रियां होती है ।" इस प्रकार रहते हुए वह शुक इन्द्र के शाप के समाप्त हो जाने पर चित्ररथ नाम का गन्धर्व-राजा होकर स्वर्ग में चला गया । और वह सारिका भी उसी समय शापमुक्त होजाने के कारण सुराङ्गना तिलोत्तमा होकर आकाश में उड़गई । उन दोनों के विवाद का निर्णय उस सभा में नहीं हो सका । इति ।

गुरुभक्तः कौत्सः

लब्धविद्यो वरतन्तुशिष्यः गुरुदक्षिणार्थी कौत्सः दिलीपसुतं रघुं प्राप्तवान्। भूतले सुप्रख्यातः रघुनामा भूपतिः विश्वजिन्नामाख्ये यज्ञे स्वधनागारे निक्षिप्तां सर्वां द्रव्यराशिं प्रजाजनेभ्यः प्रदाय तस्मिन् समये धनविहीनः सन्नासीत्। सुवर्णपात्राणामभावे तेन तस्य कौत्सस्य सत्कारादिकं साधारणैः मृत्तिकानिर्मितपात्रैः कृतवान्। विधिवत्तस्य कौत्सस्यातिथिसत्कारं कृत्वा तेन तस्य कौत्सस्य गुरोः वरतन्तुऋषेः कुशलादिकमित्थं पृष्टम्।

'किं तस्य महर्षेः वाङ्मनःकायजानि तत्तपांसि नाशं तु न यान्ति? आश्रमपादपानां वाय्वाद्युपद्रवा बाधकाः तु न भवन्ति?

आश्रमस्य मृगादयः निर्विघ्नाः निरातङ्काः विचरन्ति न वा? आश्रमस्थानि जलाशयानि यत्र सर्वे स्नानादिकं कुर्वन्ति निर्विघ्नानि सन्ति?

गुरुभक्त कौत्स

विद्या पढ़कर वरतन्तु ऋषि के शिष्य गुरुदक्षिणा प्राप्त करने की इच्छा से राजा दिलीप के पुत्र रघुराजा के पास पहुँचे। भूतल पर सुप्रख्यात वह रघु नामका राजा विश्वजित् यज्ञ को करके अपने कोषागार में रखे सम्पूर्ण द्रव्यराशि को प्रजाजनों में दान कर देने के कारण उस समय धन विहीन थे। सुवर्णपात्रों के अभाव में उस रघुने इस कौत्स का सत्कार साधारण मिट्टी के बर्तनों से किया। विधिवत् कौत्स का अतिथि सरकार करके उसने इस कौत्स के गुरु वरतन्तु ऋषि का कुशल समाचार निम्नप्रकार से पूछा।

'उस महर्षि के वाक् मन और काया से किये जाने वाले समस्त तप नष्ट तो नहीं होते? आश्रम के वृक्षों के वायु आदि के उपद्रव बाधक तो नहीं होते?

आश्रम में रहनेवाले मृग आदि पशु निर्विघ्न और आतङ्कः रहित तो रहते हैं न? आश्रम के जलाशय जहां सब स्नानादि करते हैं निर्विघ्न तो हैं?

अतिथिसत्कारोचितानि वन्यधान्यानि गोमहिषादिभिस्तु न भक्ष्यते ? विद्यामुपदिश्य प्रसन्नेन महर्षिणा किं गृहस्थाश्रमे प्रवेष्टुमनुमतिर्दत्ता ?

अतिथि सत्कार के लिये उचित, वन में उत्पन्न होने वाले, अन्न गाय भैंस आदि के द्वारा तो नहीं खा लिये जाते ?

विद्या पढ़ा कर प्रसन्न महर्षि ने क्या तुमको गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की अनुमति देदी है ?

इत्यादिकं पृष्ट्वा पुनः तेनोक्तम्, पूज्यस्य तवागमनमात्रेण मे मनः संतुष्टं न, किन्तु भवान् गुर्वर्थं वा स्वार्थं वाऽत्रागतोऽस्तीति ज्ञातुं सोत्सुकोऽस्मि ।

इत्यादि प्रश्न पूछ कर पुनः उसने पूछा 'हे पूज्य ! आपके आगमन मात्र से मेरा मन संतुष्ट नहीं है । आप गुरु के लिये अथवा अपने लिये किस लिये यहां आए हो यह जानने को मैं उत्सुक हूँ ।

इदं वाक्यमुपश्रुत्य सः कौत्सः तस्य रघोः मृण्मयपात्राणि विलोक्य शिथिलमनोरथः तं निम्नप्रकारेणावोचत् । " हे राजन् ! त्वयि सनाथे सति अस्माकमाश्रमगतं सर्वं वस्तुजातमनामयं जानीहि यथा सूर्ये प्रकाशमाने तमसोऽस्तित्वं कथं स्यात् । हे महाभाग ! पूज्यजनेषु तव भक्तिः कुलोचिता एव वर्तते । किन्तु अहं तव समीपे यदा त्वया सर्वमपि द्रव्यादिकं सत्पात्रेभ्यः प्रदत्तम् तदार्थि भावेनागतोऽस्मि इत्यस्ति मे परमो विषादः । हे नराधिप ! भवान् सत्पात्रेभ्यः प्रदत्तार्द्धिः कलाक्षयं प्राप्तस्य प्रतिपच्चन्द्रवत् शोभते । यथा धर्मार्थं क्षीणकोषस्य क्षीणत्वमपि शोभते ।

इस वाक्य को सुनकर वह कौत्स उस रघु के मिट्टी से बने पात्रों को देख कर शिथिल मनोरथ हुवा रघु को इस प्रकार बोला ।

'हे राजन् ! आपके जैसे राजा के होने पर हमारे आश्रम के सारे कामकाज विघ्नरहित ही रहते हैं यह जानें क्योंकि जैसे सूर्य के प्रकाशमान रहने पर अन्धकार का अस्तित्व कैसे रहेगा । हे महाभाग ! पूज्यलोगों में आपकी भक्ति का होना आपके कुलोचित ही है । किन्तु मैं आपके समक्ष, आपने जब अपना सम्पूर्ण द्रव्य सत्पात्रों को प्रदान कर दिया, तब अर्थ प्राप्ति के भाव से आया हूँ यही बात मेरे को दुःखी कर रही है । हे नराधिप ! आप सत्पात्रों को अपना सम्पूर्ण धन देकर कलाक्षय को प्राप्त हुए प्रतिपदा के चन्द्रमा की तरह सुशोभित हो रहे हैं । जैसे कहा है — 'धर्मार्थ खाली किये खजाने वाला नृप भी

सुरैः पीतावशेषस्य कृष्णपक्षे विधोरिव ॥

इदानीमहं गुर्वर्थमन्यत्र यत्नं करिष्ये । ते स्वस्त्यस्तु चातकोऽपि जलरहितं शरद्घनं न याचते । इत्युक्त्वा गन्तुकामं वरतन्तुशिष्यं निषिध्य रघुणादिष्टम् हे विद्वन् ! त्वया गुरवे प्रदेयं वस्तु किमस्तीति । ततः विधिवदनुष्ठितयज्ञाय गर्वाभिनिवेशशून्याय वर्णाश्रमाणां नियामकाय तस्मै रघवे स कौत्सः इत्थमुवाच । हे नृपतिवर ! समाप्तविद्येन मया गुरुदक्षिणार्थं विज्ञापितो महर्षिः चिरायास्खलितोऽपचारां मे भक्तिमेव प्रथमम् दक्षिणामगणयत् । किन्तु प्रार्थनातिशयेन संजातक्रोधेन गुरुणा मम दारिद्रयमविचार्य विद्यापरिसंख्यानुसारेण चतुर्दशकोटिसुवर्णमुद्रा मदर्थमानय इत्यवोचत् । मनूक्तचतुर्दशविद्या यथा—

'अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसा
न्यायविस्तरः ।
पुराणं धर्मशास्त्रं च विद्या
ह्येताश्चतुर्दश ॥

सोऽहमर्घ्यपात्रेण भवन्तं प्रभुशब्दशेषं मत्वा एतावद्धनं याचितुं नाभ्युत्सहे । वेदविदां वरेण कौत्सद्विजेन इत्थ-

वैसे ही सुशोभित होता है जैसे देवों को पिलाने के पश्चात् क्षीणकला वाला चन्द्रमा कृष्णपक्ष में सुशोभित होता है।'

"अब मैं गुरु के कार्य के लिये अन्यत्र चेष्टा करूंगा। आपका कल्याण हो। चातक भी शरद्ऋतु के जल विहीन बादल से जलकी याचना नहीं करता।' यह कह कर वरतन्तु-शिष्य श्रीकौत्स जाने लगा तो उसे रोक कर रघु ने पूछा, "हे विद्वन्! आपकी गुरु को भेंट की जाने वाली वस्तु क्या है? इस पर विधिवत् यज्ञ को पूर्ण करने वाले, गर्व से शून्य तथा वर्ण और आश्रम धर्म का नियमन करने वाले उस रघु को कौत्स यों बोला। "हे नृपतिवर! विद्याध्ययन समाप्त करके जब मैंने गुरुप्रवर को गुरुदक्षिणा के लिये निवेदन किया तो उन्होंने चिरकाल से की गई मेरी सेवा को ही पहले तो गुरुदक्षिणा गिना दिया। किन्तु अत्यधिक प्रार्थना करने पर क्रोधित हुए गुरु ने मेरी अर्थविहीनता का ध्यान न करके "विद्या की संख्या के अनुसार चौदह करोड़ सोने की मुहरे मुझे लाकर दो" यह बोले। मनु द्वारा बताई हुई चौदह विद्याएं", चार वेद छैं उसके अङ्ग, मीमांसा, न्याय, पुराण तथा धर्मशास्त्र ये चौदह विद्याएं प्रसिद्ध हैं।'

इसलिये मैं अर्घ्यपात्र से प्रभुशब्द मात्र शेष रहे आपको मानकर इतने अधिकधन की याचना करने की हिम्मत नहीं कर सका।' वेदविद्या के जानने वाले उस कौत्स द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर वह विश्वजित् यज्ञ

मावेदितः स विश्वजिद्यज्ञसम्पादना-ज्जगदेकनाथः एनं कौत्सं पुनः जगाद।

वेदवेदाङ्गज्ञो गुर्वर्थमर्थी कौत्सः रघोः सकाशात् प्रयोजनपूर्ति विनैव अन्यं दातारं प्रति गतः इत्यपवादस्याविर्भावो न स्यात्। अतः मदीये अग्न्यागारे चतुर्थोऽग्निरिव द्वित्रीणि वा दिनानि निवसतु तावदहं तव प्रयोजनं साधयितुं यतिष्ये'। रघोरिमां प्रतिज्ञामुपश्रुत्य सः कौत्सः प्रीतः सन् तत्राग्निशालायामतिष्ठत्। स रघुरपि अत्रत्यां भूमिं गृहीतधनामवेक्ष्य कुबेरादर्थमाहर्तुमैच्छत्।

अथ सायंकाले स रघुः कैलासनाथं कुबेरं बलेन जेतुमिच्छुः सन् रात्रौ गर्भे सज्जितं शस्त्रं यस्य एतादृशे रथमध्ये शयितवान्। प्रातः यदा स रघुः प्रयाणाभिमुखोऽभूत्तदा तं कोषगृहे नियुक्ताः कर्मचारिणः सविस्मयाः सन्तः कोषगृहस्य प्राङ्गणे नभसः पतितां सुवर्णवृष्टिं कथयामासुः। स भूपतिः रघुः तं लब्धं भासुरं सुवर्णराशिं समस्तमेव कौत्साय ददौ। तत्र अयोध्यावासिनः प्रजाजनस्य गुरुप्रदेयाधिकनिस्पृहोऽर्थी कौत्सः अर्थिकामादधिकप्रदश्च

सम्पादन करने के कारण संसार का एकमेवाधिपति रघु राजा फिर यों बोला।

"वेदवेदाङ्ग को जानने वाला गुरु के लिये मांग लेकर आया हुआ कौत्स रघु के पास से प्रयोजन की पूर्ति किए बिना ही अन्य दाता के पास चला गया। इस अपवाद का आविर्भाव न हो इसलिये आप मेरी अग्निशाला में चौथी अग्नि की तरह दो-तीन दिन निवास करें। तब तक मैं आपके प्रयोजन को सिद्ध करने का प्रयत्न करता हूँ।" रघु की इस प्रकार की प्रतिज्ञा को सुनकर वह कौत्स प्रसन्न होकर उस अग्निशाला में ठहर गया। वह रघु भी यहां की भारतभूमि से एक बार कर प्राप्त करके धन लेलिया गया है—इस कारण कुबेर से धन हरण करके लाने का उसने इच्छा की।

अब सायंकाल के समय में वह रघु कैलास नाथ कुबेर को बल से जीतने को इच्छा करके रात्री में, गर्भ में सज्जित शस्त्रवाले, रथ में ही सोये। प्रातः जब वह रघु प्रयाण करन को तैय्यार हुवा तो उसको उसके कोषगृह में नियुक्त कर्मचारीगणों ने विस्मयसहित कोषगृह के प्राङ्गण में आकाश से पतित सुवर्णवृष्टि को बताया। उस रघु ने उस प्राप्त किए हुए दीप्तमान सम्पूर्ण सुवर्ण राशि को कौत्स को दे दिया। वहां के अयोध्यावासी प्रजाजनों द्वारा गुरु को देना है उससे अधिक न लेनेवाले कौत्स की और अर्थप्राप्ति करने

रघुः द्वावप्यभिनन्दनीयावभूताम् । अथ सुवर्णराशेः गुरुगृहे प्रेषणार्थमुष्ट्राणां वडवानां च शतैरनुगम्यमानो कृतज्ञो विनयावनतश्च कौत्सः तं प्रजेश्वरं करेण स्पृशन् वाचमुवाच । 'प्रजानामधिपतेः भूमण्डलाद्वाञ्छितप्राप्तिस्तु सामान्यमेव किन्तु त्वया तु द्योरपि अभिलषितं दुग्धा । अतः तव प्रभावो कल्पनातीतोऽस्ति । सर्वाणि श्रेयांसि प्राप्तवतस्ते वैभवस्याशीः पुनरुक्तभूतमेव 'अतः त्वमात्मगुणानुरूपं पुत्रं लभस्व' इत्युक्त्वा स कौत्सः स्वगुरोः सकाशम् जगाम । इति ।

वाले की इच्छा से अधिक देनेवाले रघु दोनों ही अभिनन्दनीय हुए ।

इसके पश्चात् सुवर्णराशि को गुरुगृह में भेजने को लदे हुए सैंकड़ों ऊंट और सैंकड़ों खच्चरों से अनुगमन किया जाता हुवा कृतज्ञ और नम्रता के कारण झुका हुवा वह कौत्स उस प्रजेश्वर रघु को हाथ से स्पर्श करके बोला, राजाओं के लिये भूमण्डल से इच्छित वस्तु की प्राप्ति करना तो सामान्य है पर आपने तो स्वर्ग से भी इच्छा के अनुसार दोहन किया है । इसलिये आपका प्रभाव कल्पनातीत है । सब प्रकार के कल्याण को प्राप्त करते हुए आपके लिये वैभव का आशीर्वाद तो पुनरुक्ति मात्र होगा । अतः आप अपने गुणों के अनुरूप पुत्र प्राप्त करें" यह कह कर वह कौत्स अपने गुरु के यहां चले गए । इति ।

नाभागोऽम्बरीशश्च

मनुपुत्रस्य नभगस्य पुत्रो नाभागोऽभूत् । तस्य बहवः सहोदराः भ्रातरश्चासन् । सुदीर्घकालपर्यन्तं ब्रह्मचर्याश्रमे अधीतविद्यः आश्रमात्प्रतिनिवृत्तो नाभागः स्वज्येष्ठभ्रातृभ्यः पैत्रिकसम्पत्त्या दायभागं ययाचे । ते सर्वे नाभागस्यागमनात्पूर्वमेव पैत्रिकसम्पत्तिं बभञ्जुः । अतः तैरुक्तम् 'तव भागे अस्माकं पितरं दद्महे ।' सः स्वपितुः समीपमागत्य तद्वृत्तं जगाद ।

नभगो स्वपुत्रं नाभागमुवाच, "हे वत्स ! इमे सुमेधसः अङ्गिरसब्राह्मणा अधुना यज्ञकर्मणि निरताः सन्ति । किन्तु ते प्रतिषष्ठं दिनमुपेत्य यज्ञकर्मणि मुह्यन्ति । तान् महात्मनः त्वं वैश्वदेवे द्वे सूक्ते बोधय, सत्रपरिशेषितमात्मनः धनं ते स्वर्गं प्रति गच्छन्तः ते दास्यन्ति । अतः तान् प्रति गच्छ ।" तेन नाभागेन तथैव कृतम् । सर्वे अङ्गिरसाख्या ब्राह्मणाः यज्ञं विधिवत् परि-

नाभाग और अम्बरीष

मनु के पुत्र नभग का पुत्र नाभाग हुआ । उसके बहुत से सहोदर भाई थे । बहुत लम्बे समय तक ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याध्यन करके आश्रम से लौटकर नाभाग ने अपने बड़े भाइयों से पैत्रिक सम्पत्ति का दायभाग मांगा । उन सबने नाभाग के आगमन से पूर्व ही पैत्रिक सम्पत्ति को बांट लिया था । अतः उनने कहा 'तुम्हारे हिस्से में हमारे पिताजी को देते हैं । उस (नाभाग) ने अपने पिताजी के समीप आकर वह वृत्तान्त कहा ।

नभग (नाभाग के पिता) ने अपने पुत्र नाभाग को कहा, "हे वत्स ! ये बुद्धिमान् अङ्गिरस ब्राह्मण अभी यज्ञ कर रहे हैं । किन्तु वे प्रत्येक छटे दिन के आने पर यज्ञकर्म में भूल कर देते हैं । उन महात्माओं को तुम वैश्वदेव सम्बन्धी दो सूक्त बतला दो, वे यज्ञ समाप्त होने पर अपना अवशिष्ट धन तुम्हें देकर स्वर्ग को चले जायंगे । इसलिये उनके पास जाओ ।" उस नाभाग ने वैसा ही किया । वे सभी अङ्गिरस नामक ब्राह्मण यज्ञ

समाप्य अवशिष्टं धनं च तस्मै नाभागाय दत्त्वा स्वर्गं ययुः ।

यज्ञपरिशेषितं स्वीकरिष्यन्तं च तं नाभागं एकः कृष्णदर्शनः पुरुषः उत्तरत आगत्य "इदं यज्ञपरिशेषितं धनं ममेत्युवाच" । नाभागेन यदा "ममेदं ऋषिभिर्दत्तमिति कथितं तदा स पुरुषोऽवदत्, "विवादेऽस्मिन् ते पिता प्रष्टव्यः" । नाभागः स्वपितुः समीपमागत्य यदा प्रश्नं पृष्टवान् तदा तेनोक्तम्, "एकस्मिन् समये ऋषयः निर्णीतवन्तः यद् यज्ञवास्तुगतं सर्वं रुद्राय देयम् अतः सः रुद्र तत्सर्वमर्हति" । नाभागस्तस्मात्स्थानादागत्य तं महादेवं प्रणम्योवाच, "तवेश किल वास्तुकम् इति मे पिता मामकथयत्, अतः हे ब्रह्मन् त्वामहं शिरसा प्रणम्य क्षमां याचे" । इदम् वाक्यमुपश्रुत्य रुद्रेणोक्तम्, "ते पिता सत्यमवदत् त्वं च लोभरहितो भूत्वा सत्यं प्रभाषसे, अतोऽहम् मन्त्रदृशे तुभ्यं सनातनं ब्रह्मज्ञानं ददामि, मत्सत्रे परिशेषितं दत्तं धनमपि त्वं गृहाण" इत्युक्त्वा सत्यवत्सलः सः रुद्रो अन्तर्हितः । यः प्रातः सायं एकाग्रचित्तो भूत्वा एतच्चरित्रं संस्मरेत् सः प्रतिभावान् वेदज्ञो भूत्वा आत्मनः स्वरूपमपि पश्यति ।

को विधिवत् पूर्ण करके यज्ञ का अवशिष्ट धन उस नाभाग को देकर स्वर्ग चले गए ।

यज्ञ से बचे हुए को ग्रहण किये हुए उस नाभाग को एक काले रंग का पुरुष उत्तर-दिशा की ओर से आकर बोला, "यह यज्ञ से बचा हुवा धन मेरा है ।" नाभाग ने जब कहा कि ऋषियों के द्वारा दिया गया यह धन मेरा है तो वह पुरुष बोला "इस विवाद के विषय में तुम अपने पिता से ही पूछो ।" नाभाग ने अपने पिता के समीप आकर जब प्रश्न पूछा तो उसने (नभग ने) कहा, "एक समय ऋषियों ने निर्णय किया था कि यज्ञ की बची हुई सब सम्पत्ति रुद्र की है" अतः वह रुद्र उस सबका अधिकारी है । नाभाग उस स्थान से आकर उन महादेव को प्रणाम कर के बोला, "यह यज्ञ का धन तुम्हारा ही है यह मेरे पिता ने कहा है, अतः हे ब्रह्मन् आपको मैं शिर से प्रणाम करके क्षमा चाहता हूं ।" यह वाक्य सुनकर रुद्र बोले "तुम्हारे पिता ने सत्य कहा और तुम भी लोभ रहित होकर सत्य कह रहे हो अतः मै वेदों का अर्थ जाननेवोले तुमको सनातन ब्रह्मज्ञान देता हूं, मेरे हिस्से में आया यह यज्ञ का धन भी तुम ग्रहण करो" यह कहकर सत्यवक्ता को शरण देनेवाले वे रुद्र अन्तर्ध्यान हो गये । जो प्रातः तथा सायंकाल एकाग्र होकर इस चरित्र का स्मरण करता है वह प्रतिभावान् वेदों को जानने वाला तथा आत्मा के स्वरूप को भी देखने वाला होता है ।

नाभागस्य कथानकेन वयं पश्यामः यद् यो जनः सत्यवादी, लोभरहितो विनम्रश्च भवति सः भौतिकसम्पदा- माध्यात्मिकं तत्त्वज्ञानमपि च अस्मिन्नेव जीवने प्राप्नोति । अतः सर्वैः एष आदर्शोऽनुकरणीयः ।

नाभागस्य पुत्रोऽम्बरीषोऽभूत् । स महाभागवतः कर्त्तव्यपरायणश्चासीत् । यं क्वचिदपि न प्रतिहतः ब्रह्मशापोऽपि नाऽस्पृशत् ।

नाभागसुतो अम्बरीषः सप्तद्वीपवतीं महीमव्ययां श्रियम् अतुलं च विभवं लब्ध्वा राज्यारूढ आसीत् । तत् सर्वं पुंसामतिदुर्लभं वस्तुजातं सोऽम्बरीषः स्वप्नवत् मेने । स तु वासुदेवे तद्भक्तेषु चानुरक्तो सेवापरायणश्चासीत् । तस्य मनः कृष्णपदारविन्दयोः वचांसि तद्गुणानुवर्णने करौ श्रीकृष्णस्य मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतिं च मुकुन्दसत्कथाश्रवणकर्मणि दृशौ हरिविग्रहदर्शने अङ्गसङ्गमम् तद्भक्तगात्रस्पर्शे घ्राणं च तत्पादसरोजतुलसीसौरभे रसनां च तदर्पितनैवेद्ये, पादौ हरेः क्षेत्रपथानुसरणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने एवं आत्मनः सर्वं कर्मकलापं भगवत्पदारविन्दयोः समर्प्य सः इमां महीं भगवन्निष्ठविप्राभिहितेन मार्गेण शशास ।

नाभाग के इस कथानक से हम देखते हैं कि जो मनुष्य सत्यवादी और लोभरहित और विनम्र होता है वह भौतिक सम्पत्ति के साथ आध्यात्मिक" तत्वज्ञान को भी इसी जीवन में प्राप्त कर लेता है। इसलिये यह आदर्श अनुकरणीय हैं।

नाभाग का पुत्र अम्बरीष हुवा। वह महान् भगवान् का भक्त और कर्तव्यपरायण था, जिसको कभी कहीं न रुकनेवाला ब्रह्मशाप भी स्पर्श नहीं कर सका। इति।

नाभाग का पुत्र अम्बरीष सातों द्वीपों वाली पृथ्वी को, अव्यय लक्ष्मी को, अतुल वैभव को प्राप्त करके राज्यारूढ हुवा था। वे सब मनुष्यों के लिये दुर्लभ वस्तुएं उस अम्बरीष ने स्वप्न की तरह मानी। वह तो वासुदेव में और उनके भक्तों में अनुरक्त और सेवापरायण था। उसका मन कृष्ण के चरणारविन्दों में, वाणी उनके गुणवर्णन में, हाथ श्रीकृष्ण के मन्दिर के स्वच्छ करने में, कान मुकुन्द की कथा के सुनने में. दृष्टि हरि की प्रतिमा को देखने में, शरीर के अङ्गों का संगम भगवान् के भक्तों के शरीर स्पर्श में, नासिका उनके पादपङ्कजों में स्थित तुलसी की सुगन्ध लेने में, रसना (जिह्वा) उनको अर्पित नैवद्य में, पांव हरि के तीर्थ स्थानों के मार्गों में चलने में, मस्तक हृषीकेश के चरणों के अभिवन्दन में, इसी तरह अपने सारे कर्मकलापों को भगवत्पदारविन्द में समर्पित कर के वह इस भूमि को भगवन्निष्ठ विप्रों के द्वारा बताए मार्ग से शासन करता हुवा रहता था।

असौ अम्बरीषः धन्वनि प्रदेशे सरस्वतीतटे वसिष्ठासितगौत्तमादिभिः महाविभूत्युपचिताङ्गदक्षिणैः अश्वमेधैः यज्ञमीश्वरं ईजे । यस्य क्रतुषु देवैः सह सदस्या ऋत्विजः सुवाससः जनाः अनिमिषा तुल्यरूपाः व्यदृश्यन्त ।

इस अम्बरीष ने " धन्व " नाम के प्रदेश में सरस्वती के तट पर वसिष्ठ असित गौत्तम आदि द्वारा महान् ऐश्वर्य के कारण सर्वाङ्ग-परिपूर्ण और बड़ी बड़ी दक्षिणाओं वाले अनेक अश्वमेध यज्ञ किये । जिसके यज्ञों में देवताओं के साथ सदस्य, ऋत्विज और सुन्दर वस्त्रों वाले जनता के लोग अपलक देखने के कारण देवों के सदृश दिखते थे ।

यस्य प्रजाजनैः भगवद्गुणवर्णनं शृण्वद्भिः उपगायद्भिः अमरप्रियः स्वर्गो न प्रार्थितः । मुकुन्दं हृदि पश्यन्तः तेषां सिद्धानामपि दुर्लभाः कामाः न हर्षयन्ति स्म । सोऽम्बरीष इत्थं भक्तियोगयुक्तः तपोयुक्तश्च स्वधर्मेण हरिं प्रीणन् सर्वान् विषयसङ्गान् शनैः शनैः जहौ ।

जिसके प्रजाजनों ने भगवान् के गुणवर्णन को सुनते हुए और गाते हुए देवताओं के प्रिय स्वर्ग को भी प्राप्त करने की इच्छा नहीं की । मुकुन्द को हृदयों में देखने वाले उनको सिद्धों को भी दुर्लभ भोग (प्राप्त होने पर) हर्षित नहीं करते थे । उस अम्बरीष ने इस प्रकार भक्ति योग से युक्त होकर तथा तपस्वी उसने अपने धर्मकर्म से हरि को प्रसन्न करके सभी विषयों की आसक्ति को धीरे-धीरे त्याग दिया ।

स गृहेषु दारेषु सुतेषु बन्धुषु गजोत्तमस्यन्दनवाजिवस्तुषु अक्षयरत्नाभरणायुधादिषु अक्षयकोशेष्वपि च असन्मतिमकरोत् । तस्य एकान्तभक्तिभावेन प्रीतः हरिः विरोधिजनाभयावहं भक्ताभिरक्षकं निजसुदर्शनचक्रं तमदात् ।

उसने घर में पत्नी में, बन्धुजनों में, उत्तम हाथी, रथ, घोड़े आदि वस्तुओं में, अक्षय रत्न, आभरण और शस्त्रों में और अक्षय खजानों में " वे सब असत्य हैं " ऐसा निश्चय किया । इसके इस परिपूर्ण भक्ति-भाव से प्रसन्न हुए श्रीकृष्ण ने विरोधीजनों के लिये भयंकर और भक्तों के लिये रक्षक ऐसा सुदर्शन चक्र उसको दे दिया ।

श्रीकृष्णमाराधयन् सः तुल्यशीलया महीष्या सह द्वादशीप्रधानमेकादशीव्रतं

श्रीकृष्ण की आराधना करते हुए उसने समान शीलवाली अपनी रानी के साथ द्वादशी

दधार। व्रतान्ते कार्तिकमासि त्रिरात्रं समुपोषितः कालिन्द्यां स्नातः मधुवने हरिं आर्चयत्। महाभिषेकविधिना सर्वोपस्करसम्पदा गन्धमाल्यादिभिः श्रीकृष्णविग्रहमभिषिच्य महाभागान् ब्राह्मणान् भक्तितः संपूज्य सुवर्णविषाणीनां रूप्याङ्घ्रीणां सुवाससां पयःशीलवयोरूपवत्सोपस्करसम्पदां गवां साधुविप्रेभ्यः गृहेषु प्राहिणोत्। लब्धकामैः ब्राह्मणैः सुज्ञातः यदा सोऽम्बरीषः पारणायोपचक्रमे। तदा तस्य समक्षं अतिथिः दुर्वासा ऋषिः समागतोऽभूत्। स भूपः तमतिथिं प्रत्युत्थानासनादिभिः अभ्यर्च्य तस्य पादमूलमुपागतः अभ्याहाराय ययाचे। तद्वाक्यं स्वीकृत्य आवश्यकं कर्तुं स ऋषिः गतः। शुभे कालिन्दीसलिले निमज्य चिरं ध्यायन्नतिष्ठत्।

प्रधान एकादशी का व्रत धारण किया। व्रत के अन्त में कार्तिकमास में तीन रात्री तक अन्न ग्रहण न करके (उसने) कालिन्दी (यमुना) में स्नान कर मधुवन में आकर हरि की अर्चना की। महाभिषेक की विधि से सब प्रकार की सामग्री से, चन्दन पुष्प माला आदि से श्रीकृष्ण के विग्रह की पूजा करके उत्तम ब्राह्मणों की भक्तिपूर्वक पूजा करके सोने की सींगोवाली, चांदी के खुरोंवाली अच्छे वस्त्रों से ढकी हुई, अच्छे दूध, शील, आयु रूप तथा बछड़ों से युक्त गायों को उत्तम ब्राह्मणों के घरों पर भेजा। तृप्त हुए ब्राह्मणों के द्वारा अनुमति दिए हुए जब राजा अम्बरीष ने पारणा करना चाहा तब उसके सामने अतिथि के रूप में दुर्वासा ऋषि आगए। उस राजा (अम्बरीष) ने उस अतिथि को खड़े होकर आसन आदि देकर प्रसन्न किया और उसके पांवों में बैठकर भोजन करने की प्रार्थना की। उसके उस वाक्य को स्वीकार करके आवश्यक कर्म करने वे ऋषि चले गए। शुभ यमुना के जल में स्नान करके बहुत समय तक वे ध्यान में बैठ गए।

अत्र सोऽम्बरीषः पारणं प्रतिमुहूर्तार्धावशिष्टायां द्वादश्यां विलोक्य तद्धर्मसङ्कटे द्विजैः सह चिन्तयामास। तेनोक्तम् 'ब्राह्मणातिक्रमे दोषो द्वादश्यां यदपारणेऽपि दोषो भवेत्' अतः यत् कृत्वा

यहां वह अम्बरीष पारणे का मुहूर्त आधी घड़ी बचा है (द्वादशी के कारण) यह देख कर इस धर्म संकट के समय द्विजों से परामर्श करने लगा। उसने कहा "ब्राह्मण का अतिक्रम करने में भी दोष है और द्वादशी में अपारणा करने पर भी दोष है" अतः जो कार्य

मे मङ्गलं भूयात् अधर्मो वा न मां स्पृशेदिति तद्भवद्भिः कथनीयम् । अम्भसा व्रतपारणं अशितं नाशितं च भवतीति वेदेष्वादिष्टम् इति विप्रैः निर्दिष्टः स 'केवलेनाम्भसा व्रतपारणं करिष्ये' इति निश्चित्य केवलं जलं प्राश्य स राजर्षिः मनसाऽच्युतमचिन्तयत् । तदनन्तरं दुर्वासागमनं प्रतीक्षमाणः सोऽतिष्ठत् । क्रमशः

करने से मेरा मङ्गल हो और मुझको अधर्म का स्पर्श न हो वह आपलोग कहें ।' "जल द्वारा व्रत का पारण करना खाने और न खाने दोनों के गिनती में आता है यह वेदों में कहा है ऐसा ब्राह्मणों ने बताया तो 'केवल जल से पारण करेंगे' यह निश्चित करके केवल जल ग्रहण करके उस राजर्षी अम्बरीष ने मन से भगवान का स्मरण किया । इसके पश्चात् वह दुर्वासा के आगमन की प्रतीक्षा करने लगा ।

दुर्वासाऋषिः यमुनातटात् स्नानध्यानादिकं कृत्वा यदाऽम्बरीषस्य राजभवने प्रत्यागतोऽभूत्तदा तस्य राज्ञः सत्काराभिनन्दनाधिक्येन तेन ऋषिणानुमानितं यत्तेनातिथिपरितोषणात्पूर्वमेव भुक्तम् । मन्युना प्रचलद्गात्रो भ्रुकुटीकुटिलाननो बुभुक्षितः सः दुर्वासा कृताञ्जलि राजानमम्बरीषं अभाषत । 'अहो ! अस्य नृशंस्य श्रियोन्मत्तस्य विष्णोरभक्तस्य धर्मव्यतिक्रमं पश्यत यः मामायतमतिथिं आतिथ्येन निमंत्र्य मदागमनात्पूर्वमेव भुक्तवान् । अहमस्य सद्यः ते फलं दर्शये । एवं ब्रुवाणः स रोषेण विदीपितो ऋषिः जटामुत्कृत्य तया कालानलोपमां कृत्यां प्रकटीचकार । तामसिहस्तां ज्वलन्तीं पदा-

दुर्वासा ऋषि यमुनातट से स्नान ध्यान आदि करके जब अम्बरीष के राजभवन में लौटकर आए तो उस राजा के सत्कार अभिनन्दन आदि के आधिक्य से उस ऋषि ने अनुमान किया कि उसने अतिथि के सत्कार से पूर्व भोजन कर लिया है । क्रोध से अङ्ग फडकाते हुए टेढी भोंओंवाले मुख से भूख से व्याकुल वे दुर्वासा ऋषि हाथों की अञ्जली बांध कर खड़े हुए राजा अम्बरीष को बोले । 'अहो ! इस नृशंस धन के पद से प्रमत्त विष्णु के अभक्त का धर्मविरुद्ध आचरण देखो, जिसने मुझ अतिथि को आतिथ्य के लिये बुलाकर निमन्त्रण देकर मेरे आने से पूर्व ही भोजन कर लिया । मैं इसका तुरन्त तुझे फल दिखाता हूं ।' इस प्रकार कहते हुए उसने रोष से विशेष जलते हुए जटा के बाल उखाड कर उसके द्वारा कालाग्नी के समान कृत्या को प्रगट किया । उस तलवार हाथ में ली हुई

च भुवं वेपयन्तीं कृत्यां समुद्वीक्ष्य सः नृपः पदमेकमपि न चचाल। श्रीकृष्णेन महात्मना भृत्यरक्षायां सुदर्शनचक्रं पूर्वमेव निर्दिष्टमासीत्। तत् सुदर्शनचक्रं तां कृत्यां यथा पावकः क्रुद्धाहिं दहति तथैव ददाह।

जलती हुई और पांव से पृथ्वी को कंपाती हुई कृत्या को देखकर वह राजा (अम्बरीष) एक कदम भी पीछे नहीं हटा। महात्मा श्रीकृष्ण ने सेवक की रक्षा के लिए सुदर्शन चक्र को पहले ही लगा दिया था। वह सुदर्शन चक्र उस कृत्या को जैसे अग्नि क्रुद्ध सर्प को भस्म कर देता है वैसे ही भस्म कर डाला।

स्वप्रयासं निष्फलं तथा तस्याः कृत्याया दहनं उद्वीक्ष्य भीतो दुर्वासा र्शनानुगतो प्राणरक्षया दिक्षु पलायनं चकार। तं श्रीकृष्णस्य सुदर्शनचक्रं यथा अहिं दावाग्निरुद्धूतशिखोऽनुधावति तथैवानुधावन्तं विलोक्य सः मुनिः स्वप्राणरक्षार्थं मेरोः गुहां प्रवेष्टुं धावितवान्। दिक्षु नभसि पृथिव्यां समुद्रेषु गिरिगह्वरादिषु यत्र यत्र सः धावन् जगाम तत्र तत्रैवानुगतं सुदर्शनं ददर्श। संत्रस्तचेता रक्षकमन्विष्यमाणः स कुतश्चिद्रक्षकं अलब्ध्वा देवं ब्रह्माणं समगात्। 'हे विधातः त्राहि मामनेनागम्यमानेन सुदर्शन–चक्रेण' इति प्रार्थनां चकार।

अपने प्रवास को निष्फल और उस कृत्या के दहन को देख कर भयभीत दुर्वासा सुदर्शन चक्र द्वारा पीछा किया जाता हुवा प्राण रक्षा के लिये दिशाओं में भागने लगा। उस श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र को जैसे सांप के पीछे दावाग्नि चमचमाती हुई पीछे दौड़ती है उसी प्रकार पीछे दौड़ती हुई देखकर वह मुनि अपनी प्राणरक्षा के लिये सुमेरु पर्वत की गुफा में घुसने के लिए दौड़े। दिशाओंमें, आकाश में, पृथ्वीपर, समुद्रों में पर्वतों की गुफाओं में जहां-जहां वे दौड़ते हुए गए वहां-वहां ही पीछे आते हुए सुदर्शन चक्र को उनने देखा। भयभीत चित्तवाले रक्षक को ढूंढते हुए उनने कहीं भी रक्षक को प्राप्त न करके वे ब्रह्माजी के पास आए। 'हे विधाता ! मुझे पीछा करने वाले इस सुनर्शन चक्र से बचाओ' यह प्रार्थना की।

ब्रह्मोवाच, 'अहं भवो दक्षभृगुप्रधानाः प्रजापतयः भूतेशसुरेशमुख्याः सर्वे वयं यन्नियमं प्रपन्नाः तं मूर्ध्न्यर्पितं कृत्वा लोकहितं वहामः। 'अतोऽहं

ब्रह्मा बोले, 'मैं शङ्कर दक्ष भृगु आदि प्रजापति भूतेशों सुरेशों में प्रमुख हम सब जिस नियम में बंधे हैं उसे शिरोधार्य करके लोकहित करते हैं। इसलिये मैं इस सुदर्शन चक्र

अनेन सुदर्शनचक्रेण त्वां रक्षितुमशक्तोऽस्मि' इत्यवोचत् ।

विष्णुचक्रोपतापितः स दुर्वासा ब्रह्मणा प्रत्याख्यातो कैलासवासिनं श्रीशङ्कर शरणं यातः ।

श्रीशङ्करं उवाच—हे तात अहं सनत्कुमारः नारदो भगवान् अजः कपिल अपान्तरतमः देवलो धर्म आसुरिः मरीचिप्रमुखाश्चान्ये सिद्धेशादयः सर्वे वयं माययावृताः स्मः। अतः तस्य विष्णोः मायां न विदाम। तस्य विश्वेश्वरस्येदं शस्त्रं अस्माकं कृते दुर्विषहं, अतः त्वं तमेव शरणं याहि, स हरिरेव ते शरणं विधास्यति ।

ततो निराशो दुर्वासा ऋषिः वैकुण्ठाख्यं लोकं प्रति ययौ, यत्र श्रिया सह श्रीविष्णुः विराजते स्म। शस्त्रवह्निना संदह्यमानः तत्पादमूले सवेपथुः पतितः स उवाच, 'हे अच्युतानन्त सदीप्सित प्रभो कृतागसं मामव। ते परमानुभावं अजानता मया भवतः प्रियाणामघं कृतम्। त्वन्नामोच्चारणमात्रेण नारकोऽपि भवबन्धनान्मुच्यते' ।

श्रीभगवानुवाच, "हे द्विज! अहं भक्तपराधीनोऽस्मि। साधुभिर्ग्रस्तहृदयो मद्भक्तैः विना नाहमात्मनं न च लक्ष्मीमपि वाञ्छामि। ते मद्भक्ता

से तुमको बचाने में असमर्थ हूँ' यह कहा। विष्णु के चक्र से पीडित वह दुर्वासा ब्रह्मा के द्वारा इस प्रकार उत्तर देने पर कैलासवासी श्रीशङ्कर के शरण में गए।

श्रीशङ्कर बोले, 'हे तात! मैं सनत्कुमार नारद भगवान् अज कपिल अपान्तरतम देवल धर्म आसुरि और मरीचि आदि अन्य सिद्ध ईश आदि सब हम माया से आवृत हैं' इस कारण उस विष्णु को माया को नहीं जानते हैं। उस विश्वेश्वर का यह शस्त्र हमारे लिये असह्य है। इस कारण तुम उनकी शरण में जावो। वे हरि ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।

इसके पश्चात् निराश दुर्वासा ऋषि वैकुण्ठाख्य लोक की ओर चला जहां लक्ष्मीजी के साथ श्रीविष्णु विराजमान थे। सुदर्शन चक्र की अग्नि से जलते हुए उनके चरणों में कांपते हुए गिर कर वे बोले, "हे अच्युतानन्त, सज्जनों द्वारा चाहे जाने वाले प्रभो! मुझ अपराधी की रक्षा करो। आपकी परम श्रेष्ठता को न जानते हुए मैंने आपके प्रियजनों का अपराध किया है। आपके नामोच्चारणमात्र से पापी भी भवबन्धन से मुक्त हो जाता है।

श्रीभगवान् बोले, हे द्विज! मैं भक्त के पराधीन हूँ। सज्जनों द्वारा ग्रस्त हृदयवाला मैं मेरे भक्तों के बिना स्वयं को और लक्ष्मी को नहीं चाहता। वे मेरे भक्त भी मुझको ही

अपि मामेव परां गतिं मन्यन्ते । ते वैष्णवाः दारागारपुत्राप्तान् प्राणान् इमं लोकं परलोकमपि च हित्वा मां शरणं याताः, कथमहं तान् त्यक्तुमुत्सहे । मयि निर्बद्धहृदयाः समदर्शनाः भक्त्या यथा सत्स्त्रियः सत्पतिं वशीकुर्वन्ति तथैव मां ते वशीकुर्वन्ति । अतोऽस्मात्सुदर्शनचक्राद्रक्षणोपायं त्वां कथयिष्यामि तत् शृणु, यस्यानिष्टकरणादयमात्माभिचारस्ते जातः भवान् तमेवाम्बरीषशरणं यातु । साधुजनेषु प्रहितं ब्रह्मतेजः प्रहर्तुः अशिवं कुरुते । विप्राणां तपो विद्या च उभे निःश्रेयस्करे ते एव दुर्विनीतस्य कर्तुरन्यथा कल्पेते । अतः हे ब्रह्मन् ! नाभागतनयं अम्बरीषं प्रति गच्छ तं महाभागं क्षमापय ततः शान्तिर्भविष्यति । इति ।

परा गति मानते हैं। जो वैष्णवजन स्त्री घर पुत्र श्रेष्ठजन प्राण और इस लोक परलोक को भी छोड़कर मेरी शरण में आते हैं कैसे मैं उनको छोड़ सकता हूँ। मेरे हृदय को पूरी तरह लगाकर समदर्शी वे भक्ति के द्वारा जैसे उत्तम स्त्रियां सत्पति को वश में कर लेती हैं वैसे ही मुझ को वश में कर लेते हैं। अतः मैं इस सुदर्शन चक्र से रक्षा करने का उपाय तुम्हें बताता हूँ वह सुनो, जिसका अनिष्ट करने से यह कष्ट तुम्हें हुवा आप उस ही अम्बरीष के शरण में जांय। सज्जनों के ऊपर फेंका हुवा ब्रह्मतेज प्रहार करने वाले का ही अनिष्ट करता है। विप्रों की तपश्चर्या और विद्या दोनों हो कल्याण करने वाले होते हैं किन्तु जो उद्दण्ड होता है उसके ऊपर वे उल्टा प्रभाव करते हैं। इसलिये हे ब्रह्मन् ! नाभाग के पुत्र अम्बरीष के पास जाओ उससे क्षमा चाहो तो शान्ति मिलेगी। इति।

दुर्वासाऋषेः दुःखनिवृत्तिः

सुदर्शनचक्रेण तापितः दुःखितो दुर्वासाऋषिः भगवताऽऽदिष्टो अम्बरीषसमीपमागत्य तत्पादौ अग्रहीत् । तस्य दुर्वासाऋषेः तां पादावनतदशां विलोक्य पादस्पर्शेन विलज्जितः कृपया पीडितः सोऽम्बरीषः तद्धरेः सुदर्शनचक्रस्य अधोलिखितां स्तुतिं चकारः—

दुर्वासा ऋषि की दुःख से मुक्ति

सुदर्शन चक्र की अग्नि से जलते हुए दुर्वासा ऋषि ने भगवान् के आदेश पर अम्बरीष के समीप आकर उसके पांव पकड़ लिये। उस दुर्वासा ऋषि के उस पांव पकड़ने की दशा को देख कर (अपने) पांव पकड़ने से विशेष रूप से लज्जित होकर कृपा से अभिभूत हुए उस अम्बरीष ने उस हरि के सुदर्शन चक्र की नीचे लिखी स्तुति की।

अम्बरीष उवाच—हे सुदर्शन ! त्वमग्निरसि त्वं भगवान् सूर्योऽसि त्वं ज्योतिषां पतिः सोमोऽसि त्वमापः, त्व क्षिति. व्योमः वायुः मात्रेन्द्रियाणि चासि । हे सर्वास्त्रघातिन् त्वं सहस्रारायुतोऽच्युतप्रियोऽसि तुभ्यमहं प्रणमामि । त्वं धर्मोऽसि त्वममृतं सत्यं च वागसि, त्वं यज्ञोऽसि अखिलयज्ञभुक्चाप्यसि, त्वं लोकपालो सर्वात्मा तेजः परमपौरुषं चाप्यसि । अखिलधर्मसेतवे अधर्मशीलासुरधूम्रकेतवे त्रैलोक्यगोपाय विशुद्धवर्चसे मनोजवाय अद्भुतकर्मणे ते नमः । धर्ममयेन त्वत्तोजसा तमो विनश्यति सूर्यादीनां महात्मनां प्रकाशो रक्ष्यते, ते महिमा दुरत्यय एतत् सदसज्जगत्त्वद्रूपमेवास्ति । हे आयुधराट् यदा भगवान् निरञ्जनः त्वां दैत्यदानवसैन्यमध्ये विमुञ्चति तदा तत्र प्रविष्टः त्वं तेषां बाहूदरोर्वङ्घ्रिशिरोधराणि छिन्नविच्छिन्नानि कुर्वन् निरन्तरं विराजसे । गदाभृता जगत्त्राणकरः त्वं दैत्यदानवप्रहाणाये निरूपितोऽसि । अतः हे सुदर्शन ! अस्मत्कुलदैवहेतवे अस्य दुर्वासाविप्रस्य भद्रं विधेहि । मया किमपि दत्तम् यज्ञादिकमनुष्ठितमथवा

अम्बरीष बोला, 'हे सुदर्शन ! तुम अग्नि हो, तुम भगवान् सूर्य हो, तुम तारागणों के स्वामी चन्द्रमा हो, तुम जल हो, तुम पृथ्वी आकाश-वायु-तन्मात्राएं और इन्द्रियां हो। हे सभी अस्त्रों का विनाश करने वाले तुम हजारों दांतों (नोकों) वाले भगवान् विष्णु के प्रिय हो, तुमको मैं प्रणाम करता हूँ। तुम धर्म हो, तुम अमृत, सत्य तथा वाणी हो, तुम यज्ञ हो, सम्पूर्ण यज्ञों को ग्रहण करने वाले भी हो, तुम लोकपाल सर्वात्मा तेज और परम पौरुष भी हो। सम्पूर्ण धर्म के सेतु रूप, अधर्मशील असुरों के लिए धूम्रकेतु रूप त्रिलोकी के रक्षण के लिए विशुद्ध तेज रूप मन के वेग के समान वेग वाले अद्भुत कर्म करने वाले आपको नमस्कार है। धर्ममय आपके तेज से अन्धकार नष्ट होता है, सूर्य आदि महात्माओं के प्रकाश की रक्षा होती है, तुम्हारी महिमा अगम्य है। यह सारा सद् और असद् जगत् तुम्हारा ही रूप है। हे अस्त्रों के सम्राट् जब भगवान् निरञ्जन तुमको दैत्य-दानवों की सेना के मध्य में छोड़ते हैं तब वहां घुसकर तुम उनके पेट-उरु-पांव-मस्तक और मुखों को छिन्न-विच्छिन्न करके सदा शोभायमान होते हो। गदाधारण करने वाले संसार के रक्षक उन हरि ने तुमको दैत्य-दानव के संहार के लिए निरूपित किया है। अतः हे सुदर्शन ! हमारे (क्षत्रिय) कुल के देवता इन दुर्वासा ब्राह्मण का कल्याण करो। मैंने कुछ भी दान किया हो, यज्ञ आदि किए हों अथवा स्वधर्म का

स्वधर्मपालनं कृतं स्यात् यदि वा मम कुलं विप्रकुलं दैवकुलमिवाराध्यते चेदेषो द्विजः विज्वरो भवतु। सर्वगुणानामेकाश्रयो भगवान् मया सर्वभूतात्मभावेन यदि ज्ञातः स्यात्तर्हि तदनुग्रहेण एषः द्विजो विज्वरो भवतु।

पालन किया हो, अगर मेरे क्षत्रिय कुल ने ब्राह्मण कुल की देव कुलकी तरह आराधना की हो तो ये दुर्वासा ऋषि (तुम्हारे) ताप से रहित हो जांय। सब गुणों के एकाश्रय भगवान् मेरे द्वारा सर्वभूतात्मभाव से यदि जाना गया है तो उनके अनुग्रह से यह ऋषि ताप रहित हो जाय।

इत्थमम्बरीषेण संस्तुवतः तस्ययाच्ञया विप्रं सर्वतः प्रदहद् विष्णुचक्रं सुदर्शनमशाम्यत्। अस्त्राग्नितापेन मुक्तः सः दुर्वासा स्वस्तिमान् तमुर्वीशं परमाशिषः युञ्जानः प्रशशंस।

इस प्रकार अम्बरीष के द्वारा स्तुति करने पर उसकी याचना पर दुर्वासा को सभी ओर से जलाता जा रहा वह विष्णु का सुदर्शन चक्र शान्त हो गया। अस्त्र की अग्नि के ताप से मुक्त हुवा वह दुर्वासा विपत्तिमुक्त होकर उस भूपति अम्बरीष को परम आशीष देता हुवा प्रशंसा करने लगा।

दुर्वासा उवाच—अहो! विष्णुभक्तानां महत्त्वं अद्य मे दृष्टम्। अहं कृतागसोऽस्मि तथापि त्वं हे राजन् मन्मङ्गलानि समीहसे। यैः भगवान् मङ्गलायतनो हरिः संसेवितः तेषां महात्मनां को नु दुष्करः कश्च दुस्त्यजोऽस्ति। यस्य नामश्रुतिमात्रेण पुमान् निर्मलो भवति तस्य तीर्थपदः दासानां किङ्करणीयमवशिष्यते। हे राजन्! त्वयातिकरुणात्मना अहमनुगृहीतोऽस्मि। यत्त्वया मदघं पृष्ठतः कृत्वा मे प्राणा अभिरक्षिताः। प्रत्यागमनकांक्षया अकृताहारो राजा तं दुर्वासाऋषिं

दुर्वासा बोले, 'अहो! विष्णुभक्तों का महत्व आज मैंने देखा। मै अपराधी हूँ तो भी तुमने मेरा मंगल ही किया। जिनने भगवान् मंगलायतन हरि की सेवा की है उन महात्माओं के लिये क्या करना दष्कर है और क्या दुस्त्याज्य है? जिनके नाम के सुनने मात्र से मनुष्य निर्मल हो जाता है उस पुण्यात्मा के सेवकों के लिए क्या करना बाकी रह जाता है। हे राजन्! अत्यन्त करुणापूर्ण आपके द्वारा मैं कृतकृत्य हुवा हूं। आपने मेरे पाप को पीछे छोड़ कर (उन पर ध्यान न देकर) मेरे प्राणों की रक्षा की है। ऋषि के लौटने की आकांक्षावाले बिना आहार लिये हुए उस राजा अम्बरीष ने उस दुर्वासा ऋषि

C
891
ANC
JACLO